॥ श्रीः ॥

सुखशर्वरी ।

संयोगान्त उपन्यास ।

श्रीकिशोरीलाल गोस्वामी सम्पादक
आर्य्यपुस्तकालय आरा ने
बंगभाषा के आश्रय से शुद्ध आर्य्यभाषा
में किया ।

"यस्मिन्देशे यथाकाले यन्मुहूर्त्ते च यद्दिने ।
हानिर्लाभो यशोमृत्युस्तत्तथैव न चान्यथा" ॥

नीतिः ।

काशी ।

भारतजीवन यन्त्रालय में मुद्रित हुई ।

सम्वत् १९४९ विक्रमीय ।

निदर्शन ।

प्रेम और प्रेमत्व को सभी चाहते हैं, पर इसका उपाय बहुत कम लोग जानते होंगे. प्रेमिक प्रेम पाने के लिये व्याकुल तो होते हैं सभी अपने लिये दूसरे को पागल करना चाहते हैं, पर अभी तक इसका उपाय कितनों ने नहीं जाना है इसका अभाव केवल उपन्यास ही दूर करता है इसी लिये प्राचीनतम कवियों ने और सांप्रतिक यूरोपीय कवियों ने उपन्यास की सृष्टि की जो बात झूठ सच से नहीं होती, तंत्र मंत्र यंत्र से नहीं बनती वह प्रेम के विज्ञान "उपन्यास" से सिद्ध होती है इसके बिना किसी को वश वा संमोहित नहीं कर सकते इन सभों के साधन का एक-मात्र प्रधान शास्त्र तंत्रस्वरूप उपन्यासही है । इसके पढ़ने से मनुष्य के हृदय के ऊपर बड़ा असर होता है, और सब बात बनती हैं, ।

प्रेम उत्पन्न होने से उसको स्थिर करना चाहिये, उसी से प्रकृत सुख मिलता है, इसी लिये प्रेम की वृद्धि और उसके आस्वाद के लिये उपन्यास महौषधि स्वरूप है, जो प्रेम के पिपासू हैं वे इसमें प्रेम की ज्वलन्त छवि देख

के शीतल होते हैं। जिसके हृदय में सदा प्रेम की तरंग उठा करती है, जिसका हृदय प्रेम का नवविकसित कानन है उसके लिये उपन्यास हृदयमणि के तुल्य है।

इसमें प्रेम की प्रबलता, प्रणय की उन्मत्तता, चाह की मत्तता, यौवन का पूर्ण विकाश, लालसा का प्रबल प्रवाह, कामना का वेग, रस की तरंग, प्रीति की लहरी, सभी कुछ रहता है, इसी लिये कवियों ने साहित्यश्रेणी में उपन्यास को श्रेष्ट गद्दी दी है।

किन्तु बड़े क्षोभ का विषय है कि हिन्दी के रसिकों के अभाव के कारण हिन्दी भाषा में अभी उपन्यास का पूरा अभावही समझना चाहिये, इसका एक यह भी प्रमाण हो सकता है कि आज तक हम ने दस पंद्रह उपन्यास हिन्दी में लिखे हैं पर दो एक के अतिरिक्त अभी तक सब के सब पड़े हैं। उन्हें भी बाबू रामकृष्ण वर्म्मा भारतजीवन सम्पादक ने अपने व्यय से छाप कर प्रकाश किया हैं, और यह ग्रन्थ भी उन्ही के खर्च से छपता है। यदि भाषारसिक इधर ध्यान दें और भारत के धनी मानी राजे महाराजे आदि मान्यगण हमारी कुछ २ अर्थ से सहायता करें तो हम बड़े २ उपन्यासों को प्रकाश करके हिन्दी के गौरव पूर्ण करने का प्रयत्न करें, और हिन्दी भंडार मे जो उपन्यास का स्थान खाली

है, वह भी भरा पूरा होय, हमें आशा है कि हिन्दी के सच्चे रसिक—भाषा के यथार्थ प्रेमी—काव्य के प्रकृत मर्मज्ञ—साहित्य के एकान्तवेत्ता—गद्य पद्य के उपयुक्त सारग्राही—और कविता की एकमात्र आधार, भारत के धनी और मानीगण हमारी अवश्यमेव अर्थसहायता करके आशीर्वाद भाजन बनेंगे, "विज्ञेषु किं बहुनेति"।

१ अक्तूबर सन् १८९१ ई० } रसिकानुगामी
आरा } पं० किशोरीलाल गोस्वामी

श्रीमगंलमुर्त्तये भगतये नमः।

सुखशर्वरी।

उपन्यास।

प्रथम परिच्छेद।

श्मशान।

दो पहर रात थी, गगनमण्डल में चन्द्रमा उदय हुये थे, पर आज उनके किरण की वैसी प्रभा नहीं थी, किन्तु क्षीण थी, सामने आनन्दपुर और हरिपुर के बीचोबीच श्मशान था, वह बिस्तित प्रशस्त और निस्तब्ध था, चन्द के मन्द प्रकाश में वहां एकआध खजूर वा ताड़ दिखाई देते थे, और आस पास एकाध कनक वृक्ष मात्र थे, मालूम पड़ता था कि दिन में श्मशानवासी वायसगणों के बैठने के लिये मानो खूंटा गाड़ा हो। रात्रि के समय चिता के अंगारों की ढेरी भयंकर मालूम होती थी, कहीं २ स्यार के बच्चे सद्यःप्रसूत मृत बालकों को तोड़ रहे थे। चारो ओर सन्नाटा था पर श्मशान की निस्तब्धता भंग नहीं होती थी, सहसा गंभीर सन्नाटा मिटा न जाने कौन बोला!—

"'बेटो'! अब मैं ज्यादे नहीं चल सक्ता, यहीं विश्राम करो"।

यह बात बहुत धीमे शब्द से कही गई, इससे वृद्ध के सूखे कंठ की ध्वनि मालूम होती थी, अनन्तर किसी ने

उस्के बातों का उत्तर दिया, "बाबा ! यहां ठहरने का काम नहीं है, इस भयानक स्थान को लांघ के हम लोग दूसरा आश्रय पावेंगे।

यह बात श्मशान की बायु मे मिलगई, और यह वयस्का बालिका के कंठ की ध्वनि बोध हुई, अनन्तर वृद्ध ने कहा—

" मैं अब एक पग भी आगे नहीं चल सक्ता, बेटा बैठो, यहीं, बैठो"।

फेर न जाने किस ने कहा—

"जीजी ! बाबा जो कहते हैं, वही क्यो नहीं करतीं ? हम भी तो अब आगे नहीं चल सक्ते"।

यह बात बालक के कंठ की सी सुनाई दी।

पाठक ! बालिका को अभी आप "अनाथिनी" के नाम से जानिये, पिता और भ्राता की बातों से निरुपाय होकर "अनाथिनी" श्मशानही में बैठी। वृद्ध कांपते २ अनाथिनी के गोद में सिर रख कर सो गये।

बालक का नाम सुरेन्द्र था, वह बहिन के बगल में बैठ गया।

पाठक ! इन लोगों से आप कुछ परिचित् हुए, अब इनका कथोपकथन सुनिये।

बालिका—"बाबा ! इस समय चित्त कुछ अच्छा है न" ?

वृ०—"बेटी ! मालूम पड़ता है कि एकबारही अच्छाहो जायगा, ओ ! बड़ा कष्ट है ! दुष्टों के हाथ से बच के अब काल के गाल में गिरा चाहता हूं" ।

बालिका—"बाबा ! एसी बातें न बोलो ! सभी ज्वर से परित्राण पाते हैं, तुम अभी रस्ता चले हो उसी से जादे कष्ट मालूम होता होगा" ।

वृ०— "ठीक है ! किन्तु बड़ी यातना है ! यह यातना मृत्यु यातना सी बोध होती है । बिचारा था कि मित्र के घर जाकर तुम लोगों को सुखपूर्वक रखेंगे ! हाय ! सो नहीं हुआ चाहता !"

बालिका— "हा ! ये बातें क्यो कहते हो ! मन मे कुचिन्ता का आन्दोलन मत करो ! बाबा ! हाथ से पेट सुहरावें ?"

इस बेर वृद्ध ने कन्या की बातों पर ध्यान नहीं दिया वे अपनी चिन्ता मे डूबे थे कन्या और पुत्र कहां जांयगे ! मित्र के घर नही पहुंच सके ; इत्यादि चिन्ता उनके मन मे दौड़ रही थी थोड़ी देर के बाद उन्होने दीर्घ निश्वास लेकर धीमे और बिकृत स्वर से कहा:—

"बेटी— जो— सोचा था— सो— नहीं— हुआ ! हा !"

बालिका ने आग्रह से पूछा:—

"बाबा! क्या सोचा था?"

वृद्ध ने कुछ उत्तर नहीं दिया मालूम होता था कि उस समय उन्हें बोलने की शक्ति नहीं थी, बड़े कष्ट से बालक का हाथ लेके बालिका के हाथ मे पकड़ा दिया और एक बार दोनो की ओर देख के आंख मूंदा।

बालिका करुणा पूर्बक बोलीः—

"हायं! बाबा मुझे किसके पास छोड़े जाते हो?" उस समय कदाचित् वृद्ध की श्रवणेन्द्रिय प्रबल थी, सुतरां बालिका की कातर ध्वनि का उत्तर न देके केवल अपना दोनों हाथ वृद्ध ने आकाश की ओर उठाया, मन मे दारुण दुःख हुआ, मुंदे नयनों की कोनों से चौधारे आँसू बहरहे थे। अभी तक वृद्ध पृथ्वी के मोहजाल मे जड़ित थे, धीरे २ आंसू थम्हे, मायाजाल छिन्न हुआ और वृद्ध का प्राणवायु उड़ गया।

निश्वास के रुकने से बालिका ने जाना कि पिता परलोक गामी हुए, तब बहुत सोच बिचार के अपनी गोदी से उनका मस्तक उठाके पृथ्वी पर रख दिया। बालक वृद्ध की मृत्यु का हाल कुछ नहीं जानता था वहीं बहिन के पास ही बैठा था न जाने क्या सोच समझ के बोला:—

"जीजी! बाबा तुम से क्या कहगये हैं? कुछ देने के लिये"?

बालिका उस समय चुप चाप रो रही थी, भाई की बातों पर कान नही दिया इससे बालक कुछ क्रुद्ध हो-कर बोला:—

"मैं बाबा को उठा के अभी पूछता हूं" यह कहके बालक मृत पिता के समीप जाकर जोर से पुकारने और उन्हे हिलाने लगा।

"बाबा! बाबा! जो तुम कहगये हो सो जीजी न देती हैं न बोलती हैं"

पिता न जागे और न कुछ उत्तर दिया यह देख के बालक क्रुद्ध होकर कहने लगा:—

"उठते क्यो नही बाबा? हमे बड़ा डर लगता है। न उठोगे तो हम छूड़ी से अपना हाथ काट डालेंगे!"

वृद्ध जो इस मायाभूमि को छोड़ कर गए थे इस बात को बालक नही जानता था। पिता से उत्तर न पाके रोनी सूरत बनाकर बहिन से कहने लगा!—

"देखो जीजी कितना पुकारा बाबा नही उठते!" बालिका ने सोचा कि यह बात छिपने वाली नही है। अन्त प्रकाश होही जायगी। इस लिये पत्थर सा कड़ा कलेजा कर के बड़े दुख से कहा!—

"भैया सुरेन्द्र! पिता अब न जागेंगे न कुछ बोलेंगे, वे सदा के लिये इस लोक को छोडकर परलोक सिधारे।"

आंखो से आंसू बहने लगी और करुणा से कंठ रुद्ध, हो गया।

बा०—"जीजी! झूठ कहती हो बाबा कहां चले गये हैं? यह देखो बाबा तो सो रहे हैं।"

बालिका – "यह केवल देह मात्र है प्राणपखेरु तो देहपिञ्जर छोड़ के उड़ गया। यह पिशाचिनी निद्रा कभी भंग न होगी। अतः जो जा के न आवे वही मृतक कहाता है"

बा०—"जीजी! मर क्या गया? मरा हुआ आदमी क्या फिर नही आता?"

बालिका – "भाइ जानते नही? वह जो नन्हू की मा मार गई सो क्या फिर कर आई? उसी तरह तुम्हारे पिता भी अब न फिरेंगे।"

बा०— "सोतो मालूम है। किन्तु सुन्ते हैं कि नन्हू बड़ा धूम करता था इसी से उस्की माँ मर गई हम लोगों ने क्या किया जो बाबा मारगये?"

बालिका— "हम लोगों ने क्या किया भाई। जो कुछ किया सो हमलोगों के अदृष्ट ने।

तदनन्तर बालिका ने स्नेहपूर्वक अपने छोटे भाई को गले से लगा लिया और उसे गोदी मे लेकर, स्मशान के चारो ओर कुछ खोजने लगी। थोड़ी दूर पर एक थोई

हुई चिता के पास बहुत से काठ के टुकड़े पड़े थे। धीरे२ उन्हे एकट्ठा कर के बड़ी निपुणता के संग चिता सज के उसपर पिता का मृत कलेवर रख, चकमक से आग निकाल अग्नि बाल ज्वलित् किया। बालिका ने जलता हुआ लुक लेके अपने हाथ से पिता के मुख मे प्रदान किया। हा! जो मुख अमृत बरसाता था, उसमे आज अपने हाथ आग लगाना पड़ा! अब चिन्ता करना वृथाहै पितातो आवेंगे नहीं, और संस्कार अवश्य करना चाहिये यह बिचार के बालिका ने चिता मे भयानक अग्नि लगा दी। अग्नि ने जब धह धह शब्द करके मृत देह को भक्षण करना प्रारंभ किया तो न जाने किसने श्मशान मे से कहा:—

" अनल! तुम्हारी सर्वदाहक क्षमता हम जानते हैं। क्षणभर अपनी चाल रोको। एक बेर हमे पिता का मृत कलेवर स्पर्श कर लेने दो। " यह वाक्य किसने कहा? उसी बिचारे अनाथ बालक नें। पर अग्नि ने कुछ भी नही सुना, देखते २ वृद्ध का शरीर पाञ्च भौतिक् भस्म में परिणत हुआ। हवा जोर से बहती थी किन्तु जिस ओर " अनाथिनी " बैठी थी ठीक उस्के बिपरीत दिशा मे बायु की गति थी और बालिका की ओर भस्म राशि वा अग्नि का उत्ताप नही आता था। इस्से बालिका ने

बिचारा कि भस्म हुये पिता का अभी तक इतना स्नेह है। हा वह पिता कहां है?

बालक अभी तक चुप था। अब न जाने क्या सोच समझ के बोला:—

"जीजो अब बाबा कहां गये"?

बालिका बिचारी क्या उत्तरदेती? अन्त मे सोच के बोली:- "स्वर्ग मे"।

बा०—"कैसे स्वर्ग मे जाना होता है? क्या आदमी मरनेही से स्वर्ग जाता है?"

बालिका—"अच्छा काम करने से स्वर्ग मिलता है।"

बा०-"क्यो जीजो! हम लोगों को इस जन सून्य जंगल मे- नही २ श्मशान मे छोड़ के बाबा चले गये। यह क्या उन्हों अच्छा किया"?

बालिका- "इसमे उनका दोष नहीं किन्तु हम लोगों के भाग्य का है"

बा०-"जीजी! मार्ग में जोजो बातें बाबा ने कही थीं। वह तो एक भी न हुई! अब हम लोग कहाँ जायंगे? कौन आश्रय देगा,,?

बालिका०- 'भाई! दयामय जगदीश्वर को छोड़ और हम लोगों का कौन रक्षक है? वो जहां ले जांयगे वही जांयगे"।

यह बात सुनके बालक सन्तुष्ट हो गया अनाथिनी ने पहले बिचारा कि सबेरे कहां जायँगी ? किस्के दरवाजे खड़े होंगी क्या करेंगी ? अनन्तर हृदयभेदी चिन्ता दुःखभाराक्रान्त हृदय मे स्थान न पाके स्फुट स्वर में व्यक्त हुई: –

"अहा ! चिता मे कूद के प्राण त्याग करती तो, यह दुःख न भोगना पड़ता, और अनन्त काल के लिये सुख होता" ।

बालक ने समझ के धीरे से कहा: –

" क्यों बहिन ! तुम इस तरह क्यों सोचती हो ? अभी तो तुमने कहा है कि दयावान जगदीश्वर हम लोगों के रक्षक हैं तो क्या यह बात मिथ्या है ? जो ऐसा हो तो फिर एक चिता जलाओ और उसी मे कूद २ के हम लोग अनन्त शान्ति को पावें और पिता से मिलैं" ।

बालिका प्रबल शोक सम्बरण करके बोली: –

"भाई ऐसी बात नहीं कहना होता, जगदीश्वर अवश्यही रक्षा करेंगे" ।

बा० – "अच्छा तो अब न कुछ भय करें न कहें ! पर हमलोगों को आहार कौन देगा ?"

बालिका० – भय क्या है ? जो सब को आहार देते हैं वह हम लोगों को भी देगें ! और कुछ उपाय न होने से भीख मांग कर मैं तुम्हे खिलाऊँगी " ।

बा० – " क्यों जीजी! जैसे हमारे घर बहुत से भिक्षुक आया करते थे, वैसेही तुम भी दूसरों के घर जावगी? पर हम तो अकेले न जाने देंगे, हम भी तुम्हारे सँग चलेंगे, किन्तु न जाने हमे क्यो बड़ी रुलाई आती है"!

बालक के वाक्य ने बालिका के गंभीरतम हृदय में आघात किया। वह दोनों हाथ उठाकर दयामय ईश्वर को स्मरण करती। धीरे २ निशादेवी अपना घूंघट पट खोल के अन्तःपुर मे प्रविष्ट हुई और प्रभात की प्रभा चारोओर फैलने लगी। श्मशान मे वहां के अधिवासी पशु पक्षियों की कल ध्वनि सुनाई देने लगो –

— ❊❊❊ —

द्वितीय परिच्छेद

कुटीर।

सन्ध्या होनेवाली थो, आकाश सघन मसीमयी जलदमाला से ढका था, अभी तक प्रचण्ड बायु बहती थी, पर अब मेघमण्डल को एकता के सूत मे बंधे देख के भय से अपनी प्रचण्डता कम करने लगी, मेघमाला प्रभु को बश मे करके हँसी, वही हँसी चंचला की छटा थी, मेघ के हास्य को देख के प्रचण्ड बायु तिरस्कार के छल से गरज उठी, हँसी थम्ही – तिरस्कार भी रुका। मेघमण्डल मानो अपना

दोष स्मरण कर अनुतप्त हो रोने लगी, वही अश्रु बिन्दु प्रबल बारि धारा मे परिणत होकर बरसने लगी, रोते २ वायु की अवश्यता याद करके मेघगण बीच २ मे, हँसते भी थे, रह २ के बज्र गंभीर गर्जन भी करते थे, समय भयङ्कर और दुर्गम था।

बिजली के आलोक में सामने एक सरपट मैदान दिखाई दिया, यह स्थान पूर्वोक्त स्मशान से दो कोस उत्तर की ओर था, प्रान्तर के एक ओर कल्लोल बाहिनी भागीरथी बहती थी; वहां की वृक्षों के पत्तों के ऊपर वर्षा बिन्दु पड़ापड़ पड़ती थी, बराबर वृष्टि ने वृक्ष के वासी पक्षियों को बड़ा कष्ट दिया था, इस्से वे कलरव कर रहे थे किन्तु सभों का शब्द वृष्टि के वर्षा कर शब्द से मिल गया था। "नक्कारखाने मे तूती की आवाज"।

सहसा उस प्रान्तर में " आह! कहीं! ऐसी जगह नहीं मिलती जहां आश्रय लूं! इस प्रकार सकरुण आर्त नाद सुनाई देने लगा। यह भयंकर ध्वनि वृष्टि के तुमुल शब्द में नही लीन हुई बहुत दूर तक तैर गई: प्रान्तर को दूसरी ओर से " इधर आओ बेटा!" यह शब्द तीर की तरह छूटा हुआ आया, यह ध्वनि आश्रय चाहने वाले के कानों मे गई उस समय पथिक चारो ओर देखने लगा बिद्युतप्रकाश से दिखाई दिया कि पासही वृक्षों

की बारी से घिरे हुये एक कुटीर मे से दीपक का थोड़ा २ उँजाला आ रहा था। इसी प्रकाश को लक्ष्य कर के बड़े कष्ट से पथिक वहा पहुंचा, और प्रकाश के समीप पहुंच के उसने देखा कि एक सुन्दर कुटीर है, उसके बाहर का भाग वृक्षों से घिरा हुआ था, और द्वार पर एक बृद्धा बैठी चर्खा कात रही थी। बृद्धा ने पथिक को देख के आह्लाद के संग कहा।–

"बेटा! मेरी आवाज तुमने सुना था न? बैठो बेटा बैठो"!

पथिक आश्रय पाकर हर्ष से बुढ़िया के पास बैठ गया, बृद्धा चर्खा कातना बन्द करके पथिक के संग वार्तालाप मे प्रवृत्त हुई!

वृ०— "तुम्हारा घर कहां है भाई? और नाम क्या है?"

प०— "हमारा घर मिहरपुर है, नाम मनसाराम"

वृ०— "यह लम्बा चौड़ा नाम गाम रहने दो! हम भैया बच्चू कहके पुकार लेंगी। भला इस आंधी पानी में कोई घर से बाहर निकलता है? कहां से आते हो? और अब तक कहां रहे?"

प०— "हां आं आं" यह कहके अपने मन मे विचारने लगा – "व्यर्थ अब तक इधर उधर भटकते थे! जिसे

खोजते थे उसने स्वयं हो पुकार लिया'।

वृ०— "अच्छा बेटा तुम क्या मुसल्मान हो? कितने दिनों से फकिरो करते हो"?

प०— "हां ठोक— बीस वर्ष से"।

वृ०— "अच्छा रोज खाने भर भीख मिल जाती है?

प०— "नहो भाई इस्का कोई ठिकाना नहो है"। "सबे दिन नाहीं बराबर जात"—किसी दिन ज्यादे मिलता है, किसी दिन कम"।

वृ०— "आज कहां गए थे। और क्या मिला'?

प०— "आज आनन्दपुर गये थे पर कुछ विशेष नहीं मिला"।

इसी समय एक बालक कुटीर के भीतर से आकर बोला:– "क्यों! मां! यह पानी कब खुलेगा रे?" पाठक महाशय! आपलोग इस बालक को चिन्हते हैं? यह हमलोगों के परिचित् सुरेन्द्र कुमार हैं। वृद्धा ने बालक को गोदी मे लेके कहा:– ' हां! बेटा! पानी बरसने से क्या तुम्हें कुछ कष्ट होता है?'

"अब पानी खुलेगा" यह कहके फकीर ने वृद्धा से पूछा कि यह बालक किस्का है?

वृद्धाने हँसते २ कहा:–

"अब यह मेरा बालक है"।

फकीर ने आग्रह पूर्वक पूछा!—"तुम्हारा "अब" शब्द सुन के हमारा कुतूहल बढ़ गया"।

वृ०— "तो सुनो तुम से सब बात कहती हूं – यह बालक सच मुच हमारा नहीं है, प्रायः पांच चार दिन हुआ कि प्रातः काल के समय इसकी बहिन इसे संग लेके रोती २ आश्रय ढूंढ़ने के लिये यहां आई; मैने उससे सब बात पूछी सुनने से बड़ा दुख हुआ इसी लिये उसकी दुःख से दुखित होकर, यही आश्रय दिया तब से ये दोनों यही रहते और मुझे मां कहते हैं"।

प०— "तुमने उससे क्या पूछा था"?

वृ०— "यही कि बेटो तुम क्यो रोती हो?"

प०— "उसने क्या कहा?"

वृ०—"हां भाई! आते २ मार्ग में उसके पिता का परलोक हुआ. और अपना पराया कोई न रहने से वह रोती थी"।

प०—"हा! बड़े दुःख की बात है। ये लोग कहां से आते थे?"

वृ०—"वहीं से तो—ऐं—हां ठीक याद पड़ा, हरीपुर से तुम बेटा हरीपुर जानते हो?"

प०—"आँख से तो नहीं देखा है, किन्तु नाना के बूआ की चाची के मुख से सुना था। ये लोग क्यों आते थे?"

बु० – "वहीं के जमीदार के अत्याचार से"।

प० – "कौन अत्याचार ?"।

बु०—"देखो बेटा ! हरीपुर के जमीदार को लड़का बाला नहीं है, वह बलात् इसी बालक को दत्तक लिया चाहता है"।

प०—'या अल्लाह ! हमलोगों का कहां ऐसा भाग है कि अपना बालक न होने से दूसरे का लड़का लेके सुख उठावें ! हां इसके बाद ?"

बु० –"अनन्तर भयानक अत्याचार से घबड़ाकर रातोरात लड़का लड़की को संग ले के इसके बाप घर से भागे थे. पर मार्ग में आते २ उनकी मृत्यु हुई"।

पथिक ने अपने मन में कहा:—"बस अब कहां जाता है ! वह मारा ! ! !" प्रगट बुढ़िया से बोला "हां ! ये लोग जाते कहां थे ?"।

बु०– 'यह बात यह नहीं जानती, कदाचित् कोई मित्र के घर जाते थे । क्यों बेटा ! धनिकों को दूसरों पर दया नहीं आती ?"।

प० – 'यह बात क्योंकर कहें, सदा से तो दुःख भोग रहे हैं"।

बु० –"हां भाइ ! ठीकही तो है ! हम दरिद्रों के पास क्या धरा है ? तो भी दया मया जानती हूं । किसी

का बुरा नहीं चेतती, और देखो न! उस बूढ़े बिचारे का बालक देख के जमीदार की आँख इसी पर गड़ गई"।

प०—"तुम्हें खूब दया मया है! भाग्यों से तुम्हारा आश्रय मिला, इसी से प्राण बचे. अब तक तुम्हारे इस चर्खे की तरह घूम रहे थे। अच्छा! अल्लाह के फज़ल से लड़का जीता रहे"।

वृ०—"ठीक कहती हो बेटा! ठीक है! कुछ जंतर मंतर दे सकती हो? जिसमें यह अच्छा रहे"।

प०—"हां हां!! जब सबेरे जायँगी तब तुम्हें कुछ दे जायँगी"।

वृद्धा ने सन्तुष्ट होकर पथिक को फल मूल आदि आहार देकर अतिथि सत्कार किया, पथिक भोजनों को आत्मसात् करके सोचते विचारते सोया।

अब जल वायु भी शान्ति हुई थी, मण्डूकों की "टर्रकों टर्रकों" कर्कश ध्वनि कानों में आने लगी जल का "कल कल" शब्द सुनाई देने लगा। धीरे २ वृष्टि थमी, अब शृगालों का कर्कश शब्द गगन स्पर्श करने लगा।

वृद्धा अनाथिनी बालिका--और बालक सुरेन्द्र उस ठण्ढी और गम्भीर निशा में निद्रित थे. धीरे २ निशादेवी का राज्य लुप्त हो गया। कुटीर के भीतर सीतल मन्द

सुगन्ध समीर जल कण लिये मृदु २ चालों से अनाथिनी बाला को आकर स्पर्श करने लगा। अभी हम इस दुःखिनी बाला को अनाथिनीही कहते हैं उसने उठकर जो देखा उससे बहुत स्तम्भित और चिन्तित हुई। देखा कि "सुरेन्द्र नहीं है" और पथिक का भी कुछ पता नहीं है। बिचारी बाला घबड़ा के आर्तनाद करने लगी। उस्के रोने से वृद्धा भी उठ बैठी और हाल सुनकर महादुःखित हुई। इस समय कुटीर में सूर्य्य रश्मि धीरे २ आ रही थी।

— ※※※ —

तृतीय परिच्छेद।

भग्न गृह।

अनाथिनी अनाथिनी की तरह रोने लगी, वृद्धा ने उसे बहुत समझा बुझाकर अपने जाने हुये गांवों में बालक को खोजने के लिये प्रस्थान किया। अकेली बालिका क्या करती? कितनी चिन्ता हुई? उसने बिचारा कि "एक दुःख के ऊपर दूसरा दुःख क्या अवश्य होता है? हा! पिता कि मृत्यु -भ्राता की चोरी। पिता ने मरते समय हमारे हाथ में सुरेन्द्र का हाथ पकड़ा दिया था। पिता! तुम्हारी आत्मा इन बातों को देख के न जाने हमे कैसी कृतघ्न कहेगी? मै क्या करूं? मै निःसहाय और सामान्य बालिका हूं"।

अनाथिनी ने इसी तरह सोचते २ अपनी गठरी खोली। दो एक मैले वस्त्र निकाले, न जाने क्या देख के सहसा चिन्ता दूर हुई, उसने देखा कि कपड़े के भीतर एक पत्र पड़ा है। आग्रह से उसे उठा लिया, और देखने से शोकराशि बढ़ गई। ऐं! यह पत्र किसका है? मेरे पिता का? मन में दो एक बेर उसे पढ़ा पर चित्त के न मानने से पुनः धीरे २ पढ़ा, पत्र यही था:—

महाशय!

"आपका पत्र पाकर बहुत दुःखित हुआ, किन्तु अत्यन्त सन्तुष्ट भी हुआ, रामशङ्कर बाबू का अत्याचार तो मेरे दुःख का कारण और अनुग्रह पूर्वक आपका यहां आने का प्रस्ताव मेरे सुख तथा हर्ष का हेतु है। जन्मभूमि में जो शत्रु लोग बहुत बढ़ जायँ तो उस प्यारी भूमि को भी छोड़ही देना चाहिये। आप जो यहां आने में संकोच न करेंगे तो मैं अतिशय बाधित होऊँगा। मुझे आप अपने छोटे भाई की तरह जानिये आप हमलोगों के मान्य और शुभाकांक्षी हैं। आपकी आन्तरिक इच्छा मैंने समझा, यहां आने पर यथासमय सम्पन्न होगी। आपने लिखा कि—"दरिद्र व्यक्ति के कन्या के सहित संभ्रान्त पुरुष के पुत्र का विवाह किस प्रकार सम्भव है"—यह तीखी बात फेर न सुनूं तो नितान्त अनुगृहीत होऊँगा। पत्र पातेही बालिका और बालक के संग अवश्य पधारिये।

वशंवद

श्रीहरिहर शर्म्मा।

पत्र को पढ़ के अनाथिनी ने क्या सोचा ? पिता का विषय।

एक बेर यह पत्र इसके पिता के आनन्दाश्रु से आर्द्रि हुआ था, आज बालिका के कोमल नेत्रों के हर्ष विषाद मय आसुओं से भींगा।

अनाथिनी ने अनिमेष नयनो से पत्र को बारबार देखा, फेरधीरे २ मोड़ के अँचल में बाँध लिया। फिर खोला फिर पढ़ा और फेर बाँध लिया।

अनाथिनी मन में सोचने लगी कि "संसार में हमारे पिता के एक मात्र मित्र हरिहर बाबूही हैं, पर उनका घर कहां है ?"

हमारा क्या विवाह। उन्होंने लिखा कि बालक बालिका के संग आना। हा! भैया सुरेन्द्र कहां है ? पिता तो स्वर्ग गये"। सोचते २ कुटीर के बाहर आई।

प्राय: दोपहर हो गया था, किन्तु आकाश अभी तक मेघाच्छन्न था, इससे सूर्य्य के किरण की तेजी नहीं थी। सहसा कुटीर छोड़ के जिधर मुंह पड़ा उसी ओर अनाथिनी जाने लगी। किस लिये ? छोटे भाई के खोजने को।

बालिका के मन में निश्चय था कि मै "अपने भाई को खोज लूंगी। कुछ दूर जाने पर एक तीनमोहानी

मिली। तीनों पथ लोगों के आने जाने बिना प्रायः असंस्कृत हो रहे थे। एक पथ में कीचड़ होने से कई मनुष्यों के पैर के चिन्ह उखड़े थे। बालिका ने देख के वही पथ पकड़ा, कहां जाती है इस पथ का कहां अन्त है इसका कुछ ठिकाना नहीं। जाते २ अनाथिनी एक सघनवन में पहुंची। असंख्य वृक्षराजि अनन्त फूल फल अनेक पशु पक्षी और अशेष प्राकृतिक शोभा की रमणीयता से बन शोभायमान था। अनाथिनी को देख के पशु पक्षी भागने लगे, बालिका ने मृदु स्वर से हँसकर आपही आप कहा: — "हम से क्यों डरते हो?" एक सुन्दर पुष्करिणी के निर्मल जल में जलचर कलोल करते थे। वृक्षों की शाखाओं की एकता से उस बन में सूर्य्य की कोर्ण नहीं घुसने पाती थी बालिका खड़ी हो बन की शोभा देखने लगी। अन्त में एक वृक्ष कोटरे में दो बिल्ली के बच्चों की क्रीड़ा करते देख उसने दीर्घनिश्वास त्याग करके कहा: - 'इस समय भ्राता कहां है?" मन में बहुत कष्ट हुआ और इधर उधर टहलने लगी। कुछ दूर आगे जाने पर मनुष्य का पद चिन्ह दिखाई दिया। मन में आशा हुई और कई कदम आगे जाके झुकु देकर बड़ी बिस्मित हुई ! देखा कि एक बट वृक्ष में जीर्ण शीर्ण घोड़ा बँधा है। अनाथिनी ने सोचा कि यह अश्व किसका है और कहां से आया? क्योंकि अनाथिनो

जिस पथ से आई थी वह यहीं समाप्त हो गया, अश्व की ओर से आंख फेर के सामने क्या देखा कि एक पक्का मकान है किन्तु भग्नप्राय हो रहा था, तब तो अनाथिनी डरी, अनन्तर भाई के खोजने की अभिलाषा ने भय को दूर किया। आशा से पूर्ण हृदय करके बालिका उस घर के आंगन मे जाय के प्रेमावेश से उन्मत्त हो के हठात् "सुरेन्द्र सुरेन्द्र!" कह के जोर से पुकारने लगी, और उसके बातों की प्रतिध्वनि ने भीषण स्वर से उत्तर दिया। प्रतिध्वनि होने के पीछेही "भागो! २ यहां क्यों प्राण देने आई?" ये शब्द अनाथिनी के कानों में गए। बालिका डर के मारे चारो ओर देखने लगी, अन्त में ऊपर एक खिड़की में अपूर्व और अकथनीय मुख दीख पड़ा, उस मुख-छवि से मोहित होकर बालिका ने कहा—

"ऐं! आप हमें यहां से भागने के लिये क्यों कहते हैं? यहां कोई भूला भटका बालक आया है?"

अपरिचित०—"मैं कौन हूं? एक अभागा आदमी, यह भग्न गृह एक दुर्दान्त कापालिक का बासस्थान है, सुतरां तुम अपनी जान लेकर अभी भागो, और यहां न कोई बालक आया, और न मैंने देखा।

बालिका—"आप अभागे क्यों हैं? और दुष्ट कापालिक के हाथ कैसे पड़े?"

अपरिचित—"हा! क्या कहें?" यह कह के मन में कहा--

"कुछ दिनों के बाद एकबारही जीवनका दीप निर्वाण होगा, तब विपद के छिपाने से क्या प्रयोजन है?" बालिका स्थिर नेत्रों से युवक का मुख देखने लगी। अपरिचित युवा, चंचलनयनी कुतूहलाक्रान्त बाला के संशय दूर करने के लिये अपना वृत्तान्त कहने लगे।

"एक दिन सन्ध्या के समय किसी कार्य्य के लिये घोड़े पर चढ़ के इसी पथ से दूर किसी ग्राम की ओर जाता था उस समय भयानक आंधी उठी और संगही मूसलधार पानी बरसने लगा, अश्व की गति रुकने से निरुपाय हो के आश्रय लाभ की आशा से इस घर में प्रवेश किया था, रात्रि अंधेरी थी और आगे चलने की सामर्थ्य नहीं होती थी, शरीर भी परिश्रान्त हो रहा था, अतः सोच विचार के यहीं विश्राम किया और धीरे २ निद्रा आ गई, प्रातः-काल जाग के देखा कि मै नरघाती कापालिक के हाथ बन्दी हूं।"

बालिका ने युवक की बात सुन के दीर्घनिश्वास त्याग कर कहा—

"आप की दुःख कहानी सुनके छाती फटी जाती है, हा! मैं क्या कुछ भी आप की सहायता नहीं कर सकती

हूं ?तो कहिये ? वह दुःखदायी शत्रु अभी कहां है?"

युवक—"समीपवर्त्ती बनमें तंत्र साधन करता होगा, हा! उसने कितनों का सर्वनाश किया होगा।"

बालिका—"आओ न! इसी समय चुपचाप दोनो जने भाग चलें।"

युवक—"सरलहृदये! हमारा हाथ पैर शृङ्खला से बँधा है, हिलने चलने से संपूर्ण अक्षम हूं, अब तक अंधेरे में बैठे २ बड़ी चिन्ता में डूबा था। सहसा तुम्हारा कोमल स्वर कानो में गया और मैंने तब सोचा कि कोई अनाथिनी अबला कदाचित् फिर पापी कापालिक के पाले पड़ो वा पड़ेगो—इसी से तुमें सावधान करने के लिये बड़े कष्ट से खिड़की के पास तक सरक २ के आया, हा—"

युवक ने दीर्घ निश्वास लिया और बालिका ने साहस से कहा—

"तो मैं आकर आपकी बेड़ी और हथकड़ी छुड़ा दूं?"

युवक—"कोमलहृदये! देखो! आगे न बढ़ो! इस कारागार के द्वार का कठोर ताला तोड़ना तुम्हारा काम नहीं है, वह काम दुःसाध्य है। मेरे जीवन के लिये अपना जीवन उलझाव में न फँसओ, ओः! जान पड़ता है कि सूर्य्य अस्त हुए, शीघ्रही कापालिक आवेगा, भागो!

वृथा बातों में समय बीत गया, जल्दी भागो" कह के युवा ने मन में कहा—

"सब बातही गुप्त रही, रे मन! एकाएक द्वार बन्द कर! स्मरण शक्ति! विलुप्त हो! क्या आत्मपरिचय दें? इससे क्या उद्धार होगा? नहीं तो प्रयोजन नहीं है, कापालिक आता होगा"—प्रकाश्य कहा "कापालिक आता होगा भागो प्यारी! भागो २ जल्दी भागो! २—"

"आपने मुझे जीवनदान दिया, और मै आप का कुछ उपकार न कर सकी ईश्वर आपका मंगल करे, यह कह के रोते २ अनाथिनी बिदा हुई और डरती २ अपनी कुटीर की ओर चली।

चतुर्थ परिच्छेद।

भागीरथी तट।

अनाथिनी भग्नगृह से निकल के जाती थी कि उस्के कानों में यह भयानक शब्द 'मा कात्यायनी! कब मैं नरबलि दे के निश्चिन्त होऊँगा?" वज्र सा सुनाई दिया। बालिका दौड़ के उसी अश्व के पीछे जा लुकी। और आड़ में से देखने लगी कि पशुचर्म को पहिरे, नरकपाल हाथ में लिये, भयानक रूप बनाये, पर्वताकार कापालिक उस

भग्नगृह में घुसा। यदि अनाथिनी क्षण भर भी वहां और विलम्ब करती तो जरूर कापालिक के हाथों पड़ती,। बालिका के कानों में कात्यायनी का नाम अमृत सा लगा, पर कापालिक का जघन्य और हत्यारा रूप देख के कांप उठी, कापालिक के घर में जातेही भय से अनाथिनी वहां से भागी तो सही पर भय से जल्दी २ पांव नहीं उठते थे। जैसे स्वप्न में कोई आदमी भय के मारे भागनेकी चेष्टा करता है, पर उस्का पैर नहीं उठता, उसी प्रकार अनाथिनी की दशा हुई। रह २ के पीछे फिर के देखने लगी, और पत्तों के मर्मर शब्द से कलेजा कांपने लगा अनाथिनी प्राणपण से दौड़ती २ पूर्वोक्त तिरमुहानी पर आ गई, अब आशा हुई कि प्रान बचेंगे। पर साथही भाई की चिन्ता ने चित्त चञ्चल कर दिया, उसने सोचा कि "कोई काम भी नहीं सुधरा" इत्यादि नाना चिन्ता करती २ आगे चली; कुछ दूर जाके देखा कि किसी घर में आग लगी है। परन्तु पास जाय के देखकर स्तम्भित हुई, क्योंकि वह आग बुढ़िया की कुटी में लगी थी। हाय! किसने अनाथिनी के सामान्य आश्रय को फूंक दिया? अब उस बाला की क्या दशा होगी? पिता के वियोग पर अनाथिनी उस वृद्ध के आश्रय से स्वस्थ हुई थी। उस्का अपत्य स्नेह देख के अपना दुख भूल गई थी, भाई के खो जाने पर भी बुढ़िया के

समझाने से कुछ शान्ति हुई थी। किन्तु हा! अब शान्ति देनेवाली कुटीर भी नहीं है। आश्वासन देनेवाली, बुढ़िया भी नहीं है, हा! अनाथिनी की क्या दशा होगी?

पाठक! सुरेन्द्र की खोज में वृद्धा गांवों में गई थी, पर भाग्यों सेही वह इस समय यहां नहीं थी। नहीं तो भस्म हो जाती, किन्तु बालिका को ढाढ़स कौन दिलावै? अनाथिनी नें समझा कि किसी दुष्ट ने "हमलोगों को भस्म करने के लियेही इस कुटीर में आग लगाया होगा" इत्यादि सोच के रोती २ समीपवर्त्ती गंगा के किनारे जाय बैठी। रात्रि का समय था पूर्णिमा का पूर्ण चन्द्र मन्द २ हँसता था, स्वच्छ चाँदनी में टूटी फूटी सोपानावली दिखाई देती थी। बालिका एक साफ सीढ़ी पर बैठ के दीर्घनिश्वास ले के कहने लगी:—"सब आस मिटी, अब क्या? भाई की चोरी, उसका न मिलना; हा! क्या वह फिर मिलेगा? सो तो नहीं भया, दोपहर के समय हमारे हृदय की तरह आकाश मेघाच्छन्न था, पर अब तो रजनीपति के प्रभाव से सघन घनघटा अन्तर्ध्यान हो गई है। पर हमारी हृदय की मेघराशि किस आशा से छिन्नभिन्न होगी? जब भाई के खोज में गई थी तब मेरे मन में बड़ा दुःख हो रहा था। किन्तु आशा का मन्द २ दीपक बलता था, पर इस समय? अब तो आशा का दिया एकाएक बुझ गया,

दुःख गाढ़तम हो गया। पूर्णचन्द्र! तुम्हारे उदय होने से मन पहिले कैसा हर्षित होता था! किन्तु इस समय तुम्हारी कोमल किरण देखने से ज़रा भी आनन्द नहीं होता वरञ्च मर्मभेदी दुःख और शरीर में दाह पैदा होती है। चित्त चाहता है कि अब तुम्हारा मुंह न देखें, अंधेरे में दिन बितावें; हा! उस सुन्दर युवा को क्यों नहीं अंधेरे घर से उद्धार किया? अहा! कैसी मनोहर मूर्त्ति थी? पर शरीर दुर्बल और अंग श्रीहीन हो गया था। हाय! लौटने के समय उस जर्जर अखड़ी को क्यों नहीं बंधन से छुड़ाया? मै संसार में जन्म ले के किसी का भी उपकार न कर सकी हाय! न जाने इस समय कैसा मन हो गया है, हा!!!" चिन्ता से भरी बालिका सीढ़ी उतर के नीचे की सीढ़ी पर आ गई। गंगा की कैसी शोभा है? पूर्णिमा के पूर्णचन्द्र की प्रभा से प्रतिभात होकर जान्हवी का पवित्र जल चमचम करता था। मानो हँस रहा होय! बड़ा आल्हाद!! जलकण लिये शीतल समीर सनसना रही थी, और रह २ के जल की तरंगों में आघात करती थी अनाथिनी ने बहुत देर तक चिन्ता करके कहा:—"गंगा मैया! अभागी लड़की का निवेदन सुनोगी?" सर २ शब्द से वायु ने मानो पूछा "क्या?" जैसे प्रार्थनाकांक्षिणी कन्या प्यारी माता के पास किसी चीज को मांगती है वा कोई गुप्त प्रकाश क-

रती है, उसी तरह अनाथिनी ने गंगाजी की ओर सिर झुकाय के बड़ी करुणा से कहा: —

"मा ! दया करके अभागिनी बेटी को क्या अपनी गोदी में लोगी ?"।

उस समय जोर से हवा चली, गंगा में एक पर दूसरी तरंग टक्कर मारने लगी। मानो भागीरथी अनाथिनी की बात सुन के रुष्ट हुई। बालिका अपनी प्रार्थना सुनाय के न जाने क्या सोचने लगी, फिर बोली: —

"मा ! यदि मेरा हृदय कोमल न होता तो बलपूर्वक तुम्हारी गोदी में सोती, क्यों बिधाता ने सरल हृदय बनाया? कर्म में इतना दु:ख लिखा, तो हृदय पत्थर सा क्यों नहीं बनाया ? नहीं तो आज तुम्हारे उदर में प्रवेश करके सब दु:ख को एक दम भूल जाती औ शान्ति पाती । जान पड़ता है कि पहिले जन्म में बड़ा पाप किया था, उसी के फल भोगने के लिये बिधाता ने हमारे भाग्य में इतना दु:ख लिखा है, अर्थात् मेरा हृदय कोमल बनाया है । मा ! सुना है कि तुमने सैकड़ों मनुष्यों का उद्धार किया है तब नि:सहाय अबला कन्या पर क्यों नहीं दया होती ? मा ! जब मैं सो जाऊँ तो मुझे वायु के सहारे से अपनी गोद में ले लेना ।

बालिका ने रोते २ चन्द्रमा की ओर देख के कहा:--

"निशाकर! क्या तुम भी अभागिनी पर दया न करोगे? प्रिय! तुम जल्दी अस्त मत होना, नहीं तो सूर्योदय होने पर मैं किसके द्वार पर खड़ी होऊँगी?"।

बिचारी बालिका रोते २ सब दुःख दूर करनेवाली निद्रा के गोद में लेट के सो गई। निद्रा से भी मानो बालिका यही प्रार्थना करती थी कि "अनन्तकाल तक मेरी आँखों में नींद बनी रहे" अनाथिनी तो सो गई फिर क्या हुआ?

थोड़ी देर के बाद उसी घाट पर एक नाव आय के लगी, उस पर एक पचास वर्ष के वृद्ध सवार थे। रंग गोरा, शरीर दोहरा, हँसता चेहरा और परिपाटीमय था। यह नाव पर से उतर के सीढी पर पांव रखतेही चिहुँक उठे, देखा कि निम्नसोपान पर एक बालिका पड़ी सो रही है। "बालिका कौन है? इतनी रात गये यहां क्यों पड़ी है?" इत्यादि जानने के लिये चंचल होकर बालिका की दशा देख के बहुत उदास हुये, देखा कि बालिका का मुख पूर्णचन्द्र होने पर भी निशा की गाढ़ मसीमयी मेघमाला से आच्छन्न है, मुँदे नयनों की कोर से वर्षाविन्दु की तरह अश्रुविन्दु बरस रहे हैं। अवश्यही तब तक अनाथिनी के मन में चिन्ता की ज्वाला जलती होगी, क्योंकि मन सदा चंचल रहता है। कभी भी विश्राम नहीं करता, ब-

हुत श्रम से और सब इन्द्रियां शिथिल हो जाती हैं पर मन नहीं थकता, जान पड़ता था कि अनाथिनी को पहिलेवाली सब चिन्ता मिल के भीतर आन्दोलन करती हो, इसी से दुःखदायिनी चिन्ता के प्रताप से अनाथिनी रो रही होगी।

अपरिचित व्यक्ति क्या करते ? "तुरन्त निद्राभंग करना भी उचित नहीं है" इत्यादि सोचते २ निर्निमेष लोचनों से उसकी ओर निहारने लगे, चन्द्र की चमकती किरण से उसके आँसू की लड़ी मोती सी झकझकाती थी।

सहसा उन्होंने बालिका के अंचल में एक गांठ देख के जलदी से खोला तो एक पत्र निकला, उसको देखतेही कांप उठे। "ऐं। 'हरिहरशर्म्मा' यह तो मेराही नाम है! और यह मेरेही हाथ का लिखा पत्र है, हम्ही ने इसे लिखा था। ओः जान पड़ता है यही अनाथिनी है। देखें बहुत दिन हुए इस से खूब याद नहीं आता, वही होगी ठीक वही है। पर यह यहां इस अवस्था में इस प्रकार क्यों पड़ी है ?"

पाठक! हरिहर बाबू को आपने चीन्हा ? उन्होंने घबड़ाकर जोर से पुकारा "बेटी! अनाथिनी! ओः यहां क्यों आई" अनाथिनी गहरी नींद में थी पहिली पुकार में करवट बदली, दूसरे बार जाग उठी, समझो "क्या

पिता पुकारती हैं" पर मन में तुरन्त स्मरण हुआ कि पिता तो स्वर्ग में हैं ! बहुत डरी और निद्रा भी खुल गई, वह उठ बैठी और हरिहर बाबू की ओर एक वार देख के मुंह नीचा कर लिया।

हरि०—'तुम्ही अनाथिनी हो ? इस निर्जन भागीरथी के किनारे अकेली कैसे आई ?"

अना०—"मैंही अनाथिनी हूं, भाग्य दोष से यह दशा हुई।"

हरि०—"ऐ ! तुम्ही अनाथिनी हो ? तुमारे पिता कहां हैं ?" सुरेन्द्र कहां है ?"

अना०—'पिता स्वर्ग गए और भाई को कोई चुरा ले गया'

हरि०—'हा ! पिता स्वर्ग गये; यह कब' ?

अना०—'गत सोमवार की रात को"

हरि०—'किस जगह ?"

अना०—"पासही के स्मशान में"

हरि० —"श्मशान में ! वहां क्यों ?"

अना०—"वह हमलोगों को संग ले के अपने एक मित्र के घर जाते थे, डर से नाव पर नहीं गये, जंगल लाँघ के स्मशान में पहुंचे। पर वहां बहुत सुस्त होने से वहीं पर प्राण गया, हा !"

हरि०—'हा ! बड़ा दुःख भया, पहिले तो व्याकुलता—

फिर मर्मभेदी दुःख, उस पर बुढ़ापा; तिसमें पथश्रम यही सब मित्र की मृत्यु के कारण हुए, हा! वे तो अब अनन्तकाल के लिये सुखी हुए! हाय! रामशंकर कैसा पतित और निठुर है, क्या ईश्वर उसे इस का प्रतिफल न देंगे? अवश्यही देंगे, हा! सुरेन्द्र को कौन उठा ले गया?'

अना०—मैं पिता के मरने पर यहीं पास एक बूढ़ी की कुटीर में भाई के संग रहती थी क्योंकि और दूसरा आसरा नहीं था, वहां एक फकीर परसों रात को आया था वही ले गया।

हरि०—"ठीक ठीक!!"

अना०—"आप का नाम क्या है? श्रीहरिहर शर्म्मा—"

हरि०—'बेटा! तुमने कैसे जाना? मैंने तो तुमसे पहिले कुछ नहीं कहा था"!

अना०—"आप पिता के लिये इतने दुखित हुए। मेने सुना था कि आप को छोड़ के मेरे पिता का दूसरा बंधु संसार में नहीं है" इतना कह के बालिका रोने लगी।

हरि०—'बेटा अब न रो, मैंही हरिहरशर्म्मा हूं। तुम्हीं लोगों की खोज में घर से निकला था, चुप रहो, रामशंकर की दगाबाजी से तुम्हारा भाई हरा गया है।

पिता के एक मात्र उपकारी मित्र को देख के अनाथिनी का मन भर आया, भक्ति रस से शरीर फूल उठा, वह फूट २ के रोने और हरिहर के चरण पर गिर के अनेक बिलाप करने लगी । हरिहर बाबू बहुतही मर्म-हत हुए, उन्होंने धीरे २ अनाथिनी को उठाय के बहुत समझाया बुझाया, कुछ देर में शान्त होके अनाथिनी ने पूछा -

"पिता सुरेन्द्र कैसे मिलेगा ? मैं कहां—"

हरि०—"बेटी ! वह जरूर मिलैगा, बिचारालय में हम नालिश करेंगे, गवर्नमेन्ट अवश्यही दुष्ट रामशंकर को दंड देगी और सुरेन्द्र को हमें देगी, बेटा ! तुम मेरे घर की गृहलक्ष्मी हो, आज से हमारे यहां सुख से रहना ! भूपेन्द्र जब प्रदेश से फिरैगा तो उसके संग तुम्हारा बिवाह कर देंगे" ।

अनाथिनी ने लज्जा से सिर झुका लिया, इनके पुत्र का नाम भूपेन्द्र था, अनन्तर दोनों नाव पर सवार होके भागीरथी का तट त्याग के आनन्दपुर की ओर चले।

पञ्चम परिच्छेद ।

बिचारस्थान ।

सन १७९५ ई० का वैशाख महीना सोमवार का दिन, दस बज गए थे, कचहरी आनन्दपुर के पास थी, अशोक

मौलसरी, नीम आदि पेड़ों की छाया से स्थान ठंढा और मनोहर था, प्रत्येक पेड़ों के नीचे अपनी अपनी दरी बिछा कर कचहरी के अमले फैले वकील मवक्किल आदि बैठे थे, एक इमली के पेड़ के नीचे चार फकीर बैठे आपस में कुछ बातें कर रहे थे।

१ म०—"भाई मेहरबख्श! उस्की ऐसी हालत क्यों हुई?"

२ य०—"क्या जाने भाई! अल्लाह जाने! शायद सौ रुपये के लोभ से"।

१ म०—'अब वो रुपये कहां हैं? क्या होगा यह कौन कह सक्ता है? अच्छा यह कब किया था?'

२ म०—'नहीं कह सक्ते, उस्का जमोदार के संग बहुत मेल है। कब यह काम किया - खूब—अच्छा हुआ'।

४ थ० 'भाई! यह बात कब हुई?--तो क्या - खैर'।

३ म०—'मैं जानता हूं जिस दिन बहुत वर्षा हुई थी उसी दिन यह काम हुआ होगा'।

१—२०—'ठीक है, ऐसाही होगा, ओह! इसीलिये उस दिन वह हमलोगों के संग भीख मांगने नहीं गया था अच्छा वो क्योंकर पकड़ा गया?"

३ य०—'वो बड़े ताज्जुब की बात है!'

२ य०—'क्या! क्या! कहो तो सही!'

३ य०—'शायद किसी चपरासी ने रात को वहां लुक के यह सब बात सुनी थी'।

१ म०—'चपरासी तो हमलोगों के महाल में कभी नहीं जाता, उस दिन कैसे गया था ?'

३ य०—'ठीक नहीं कह सकते पर उस दिन किसी से खबर पाय के हमलोगों की तरह भेस बना के छिप के सब कुछ सुना था'।

१ म०—'यह बात मनमें नहीं धँसती, वह किस से कहता था ?'

३ य०—'कदाचित् अपनी बहू से कहता होगा'।

१ म०—ओ: ! ठीक ! जब वह अपनी स्त्री से कहता होगा तो उसे पकड़ लिया होगा'।

३ य०—'हां भाई सुर्गंदिल !—'

१ म०—'अच्छा उनसे क्या कहा था, शायद तुम्हें मालूम न होगा'।

३ य०—'यह तो ठीक नहीं कह सकते'।

४ प०—'ओ: ! मैं कुछ कुछ जानता हूं, कुछ कुछ क्या सब जानता हूं।'

१·२ ३०—'जल्दी कहो ! तुम सब जानते हो, कहो न सुनें'।

४ प०—'पहले क्या कहें ?'

१·२·३०—'कहां लड़के को पाया था ?'

४ थ०—'गंगा किनारे एक कुटो में।'

१·२ ३०—'पाया कैसे गया ?'

४ थ०—'वहां एक बुढ़िया रहतो थी, उसी ने उन लोगों को टिकाया था – हमारे जमीदार—फेर तुम जानते ही हो, बुढ़िया तक का सर्ब नाश कर डाला।

१·२·३०—'क्या कहा! क्या कहा!'

४ थ०—'क्या नहीं जानते ? उस्की कुटी को फूंकफांक डाला'।

१ २ ३०—'ठीक! अच्छा क्या बुढ़िया भी जल मरी ?'

४ थ०—'उस समय वहां कोई नहीं था।'

१·२ ३०—'फिर यह बात सब जाने दो, सिपाही को किसने खबर दी थी ?'

४ थ०—'आनन्दपुर के एक जमीदार बलभद्र बाबू के मित्र हैं उनके घर जाके उस लड़के की बहिन ने कहा, उन्होंने गोइन्दे से ठोक २ हाल सुनके कि सुरेन्द्र को रामशंकरही छिपाये हुये है, पुलिस में खबर दिया कि हरिपुर का एक फकीर सुरेन्द्र को चुरा ले गया है, चपरासियों ने थाने का हुक्म पाकर हमलोगों के महल्ले में आकर खोजखाज की, उसो समय वह फकीर पकड़ा गया, क्यों ठीक है कि नहीं?'

१-२ ३०—'ठीक है, क्यों भाई जमुरंद !'

४ थ०—'और भी कुछ सुना है ? उस जमीदार ने राम शंकर बाबू पर भी नालिश किया है'।

१ २-३०—'यह क्यों ?'

४ थ०—'उसी लड़के के लिये, आज केवल उस फकीरही का नहीं हमलोगों के जमीदार बाबू का भी मुक-द्दमा होगा कहां तक कहें, चलो कचहरी में सब जान पड़ेगा, आज एक भयानक उपद्रव होंगा, उस फकीर का भाई जल भुन के कचहरी में इधर से उ-धर घूम रहा है।'

अबतक चारो ओर कोलाहल होता था, मजिस्ट्रेट साहब के इजलास पर आतेही कचहरी ने शान्तभाव धा-रण, किया ग्यारह बजे विचार प्रारंभ हुआ, नाज़िर पेश-कार आदि अपनी २ काररवाई करने लगे पांच सात जोड़ी गाड़ियां तेज़ी से बरसाती में आकर खड़ी हुईं, कई अपरिचित व्यक्ति उस पर से उतरे, पर सभी बे जान-पहचान नहीं थे। पाठक ! देखिये हरिहर बाबू अनाथिनी को संग लेकर विचारालय में पधारे हैं—

रामशंकर शर्म्मा के देखने के लिये इच्छा होती है. देखिये हरिहर शर्म्मा के दूसरी ओर खड़े हैं। क्या चीन्हा ? यह बड़े सिरवाले स्थूलकाय—आबनूस के कुंदे - मांस

पिंड विशेष रामशंकर बाबू दण्डायमान थे, सुरेन्द्र बाबू सुन्दर कपड़ा लत्ता पहिरे एक किनारे बैठे थे, क्या आप लोगों ने चीन्हा ? हा !—कैसा मलीन वस्त्र पहिरे अनाथिनी खड़ी है। दोनो बहिन भाई एकही जगह थे पर सुरेन्द्र ने अनाथिनी को नहीं चीन्हा।

मजिस्ट्रेट साहब ने बिचार प्रारंभ किया, पीछे बद्धहस्त एक फकीर कटहरे में खड़ा किया गया, चारो ओर प्रहरी गण सतर्क खड़े थे।

यह वही भिक्षुक था जो रात को वृद्धा की कुटीर में से बालक सुरेन्द्र को चुरा लाया था, अन्यान्य कामों में एक घंटा बीता, फिर बिचारपति इस ओर झुके।

मजिस्ट्रेट – 'मनसाराम ! तुम इस लड़के को क्यों चुरा लाये थे ?'

मनसा॰—'जी हजूर मा बाप ! जिमीदार के हुकुम से।'

मजि॰ -- 'बाबू रामशंकरदास ! क्या आपने सचमुच ऐसा हुकुम दिया था ?'

राम॰ – 'जी हां ! धर्म्मावतार !'

मजि॰ – 'क्यों ऐसी आज्ञा दी ?'

राम॰ – 'दीनबंधु ! इस बालक के पिता मेरे परमात्मीय थे, मरने के समय वे इसे हमें दत्तक पुत्र की तरह दे गये थे, इसलिये इस बालक को, और बलभद्र बाबू

की मित्रता स्मरण करके उनकी कन्या को आदर से अपने घर में रक्खा था। एक दिन—न जाने क्यों—वह लड़की अपने भाई को लेके चुपचाप रात के समय भाग गई इसीलिये इस फकीर से इस बालक को मंगवा लिया'।

मजि०—'फकीर को क्यों नियुक्त किया था? और—बलभद्र बाबू की मृत्यु कब हुई थी?'

राम०—'भिक्षुक सब जगह जाते हैं, इसोसे फकीर को इस काम में रक्खा था।'

मजि०—'वह बात रहने दो, बलभद्रदास कब मरे हैं?'।

राम०—'मृत्यु तो—मृत्यु! हां! दो मास हुया होगा!'

मजि०—'वह कहां मरे थे?'

राम०—'मृत्यु?—उनके घरही मृत्यु हुई थी'।

मजि०—'बाबू हरिहरप्रसाद! आप को क्या बक्तव्य है?'

हरि०—'सब बातें बलभद्रबाबू की कन्या और पुत्र से पूछिये?'

मजि०—'अनाथिनी! तुम्हारे पिता को मरे कितने दिन हुये?'।

अना०—'महाशय! उस सोमवार की रात को!'

इस समय सुरेन्द्र ने बहिन को पहिचान के हर्षपूर्वक आनन्दध्वनि मचाया। अनन्तर रामशंकर के पास से अ-

नाथिनी के समीप जाय के बातें करने के लिये सुयोग खोजने लगे, पर कुछ नहीं हुआ. बिचारपति के अनुरोध से चुप और शान्त होना पड़ा।

मजि०—'अनाथिनी ! तुम्हारे पिता ने रामशंकरदास को सुरेन्द्र अर्पण किया है ?'

अना०—'महाशय ! यह बात बिलकुल मिथ्या है, पिता के मृत्यु के समय रामशंकरदास कहां थे ? सुतरां बाबा सुरेन्द्र को उन्हे नहीं दे गये हैं ।'

मजि०—'अनाथिनी ! तुम जरा चुप हो जाओ. । सुरेन्द्र ! तुम्हे अपने बाप की याद आती है ?'

सुरे०—'हां ! थोड़ी २ ।'

मजि०—'वो इस समय कहां है ? बता सकते हो ? ।'

सुरे०—'बाबा कहां ? बाबा स्वर्ग में हैं ।'

मजि०—'वहां कब गये हैं ? कह सकते हो ?'

सुरे०—'कब गये हैं ! कब मरे हैं ! सो ठीक कह सक्ते हैं'

मजि०—'अच्छा ! कहो तो सही वह कब मरे हैं ?'

सुरे०—'जिस दिन हमारे उस घर में बड़ी जाफत थी, उस दिन बाबा हमें तीसरे पहर निमंत्रण जीमने ले गये थे, अनन्तर उसी दिन रात को हमे गोदी ले और जीजी का हाथ थाम के बाबा घर से बाहर हुए । पथ में हमें गोद से उतार दिया था, बाबा से पूछा

कि कहां जाओगे ? तो वह कुछ बोले नहीं, तिसके बाद एक मरघट में पहुंच के जीजी की गोद में सिर धर के सो गये, थोड़ी देर के पीछे आंख खोला फिर बन्द करलिया, हमने कितना पुकारा परन्तु बाबा फिर नहीं बोले, जीजी ने कहा कि बाबा मर गए; स्वर्ग में गए।'

बिचारे एक संभ्रान्त और चिन्ताशील व्यक्ति थे, और गांव के समीपही उनका 'रमना' था, उस दिन के 'भोज' की बात उन्हे स्मरण थी, सुतरां रामशंकरदास झूठ सच समझ गए, और बोले—

'तुमने अच्छा इजहार दिया हां ! तुम्हारे पिता कहां जाते थे ? तुम कुछ जानते हो ?'।

सुरेन्द्र—यह सब हम कुछ नहीं जानते, बाबा ने जीजी से कहा होगा, वह जाने !'

मजि०—'अनाथिनी ! तुम्हारे पिता घर छोड़ के कहां जाते थे ? तुम जो कुछ जानती हो, सब कहो।'

अना०—'महाशय ! पहिले रामशंकरदास मेरे पिता के वस्तुतः मित्र थे, प्रायः दो बरस भये, इन्होंने बाबा को ५००) रुपया उधार दिया था, बाबा ऋणग्रस्त होके सदैव ऋण चुकाने का उपाय सोचते थे, रामशंकर ने पिता का अभिप्राय समझ के एक दिन अपने घर

बुला के कहा '५००) रु० जो हमारे हैं, वह हमें नहीं चहिये सुरेन्द्र को हमें गोद दे दो, दिन स्थिर कर लिया है, मंगल के दिन – बाबा कुछ नहीं बोले, घर आय के सब बातें हमसे कहा, और बहुत रोने लगे।'

मजि०—'जब तुम्हारे पिता ने रामशंकरदास से कुछ भी नहीं कहा तो उनकी इच्छा लड़का देने की होगी। 'मौनंसम्मतिलक्षणं'।

अना०—'जी नहीं कुछ भी इच्छा नहीं थी, बहुतही दुखी भये थे, इसीसे कुछ नहीं कह सके थे"।

मजि०—'अच्छा, फिर?'

अना०—'फिर! उसी दिन रामशंकर ने बाबा को बुलाय के बहुत सी बातें कही, बाबा फिर चुप नहीं रह सके बोले कि मै कभी सुरेन्द्र को न दूंगा, भीख मांग के भी आपके ऋण का परिशोध करूंगा, एकही पुत्र है कैसे दें? दरिद्र होने से क्या मैं दयाशून्य हूं?—यह बात कह के घर आकर बाबा ने सब हाल हमसे कहा, और भी उसी दिन रामशंकरदास सन्ध्या के समय हमारे घर आये और बोले कि—बलभद्रदास इस विषय में अब तुमसे मित्रता का व्यवहार न करेंगे, तुम्हारे पुत्र लेने के लियेही रुपये उधार दिये थे,

इत्यादि क्रुद्ध होकर बहुत सी उटपटांग बातें कह के चले गये, हम और बाबा बहुत रोये। अनन्तर बाबा बोले कि - अब रोने से क्या होगा? हमारे एक मित्र हैं उन्हे यह हाल जनावें, वे अवश्यही सहायता करेंगे, उनके यहां जांयगे, अब इस गांव में नहीं रहना चहिये, जन्मभूमि होने से क्या होता है? शत्रु तो बहुत हैं। - यह बात कह के चुपचाप अपने मित्र को पत्र लिखा, आशा लगाये २ उन्हें उत्कट पीड़ा हुई। अस्तु ठीक समय पर पत्र का जवाब मिला, हमसे उन्होने और कुछ नहीं कहा था एक दिन उन्ही मित्र के घर हमलोग जाते थे कि मर्घट में पहुंच के बाबा का परलोक हुआ"। बात तै हुई और अनाथिनी की आंखों से आंसू बहने लगे, सुरेन्द्रभी चुप नहीं था।

मजि० — 'ठीक है ठीक है!!! - रामशंकरदास, तब तुम कैसे सुरेन्द्र को बलात् अर्थात् बलभद्रदास की सम्मति विना, नियमपूर्वक दत्तक ले सकोगे? सुरेन्द्र तुम्हारा कोई नहीं हो सका'। सहसा विचारक आर्त्तनाद करके कुर्सी पर से भूमि में गिर पड़े, एक तीखी छुरी उनके बगल में घुसी थी, सभों ने घबराकर विचारक [illegible] उठाया, । यह किसका काम है? गर्भस्राव पापिष्ट [illegible]ंकर के आदेश से मनराम के भाई खुराफात-

अली का! इस समय रामशंकर गायब हो गये थे। बिचारक असपताल पहुंचाए गए और दो कान्सटेबुल रामशंकर की खोज के लिये दौड़े।

धीरे २ गोलमाल मिटा, हरिहरप्रसाद अनाथिनी और सुरेन्द्र को संग लेकर गाड़ी पर चढ़े, इसी समय एक वृद्धा गाड़ी के पास आय के खड़ी हुई, यह वही बुढ़िया है जिसने अनाथिनी को आश्रय दिया था, वृद्धा को देख के अनाथिनी ने आल्हाद से कहा।

"मा कहां गई थीं?"

वृद्धा०—"ऐ बेटी मैं तभी से सुरेन्द्र के खोज में गांव गांव मारी २ फिरती थी किसी ने कुटीर फूंक दिया तुम भी वहां न थी. और क्या—"

अना०—"मैं तो यह रही मा! आओ न इसी गाड़ी पर!, सब कोई एकही जगह रहेंगी, आवो मा चलो!"

वृद्धा०—"बेटा! तुम्हे देख लिया या अब क्या-"

हरिहर बाबू वृद्धा के उपकार की बात जानते थे, सादर उसे गाड़ी पर चढ़ा लिया,

आना०—"मा! तुम क्यो कचहरी आई थी,?"

वृद्धा०—"सुना था कि फकीर ने जो लड़का चुराया था उस का बिचार होगा, ईसी से यहां आई [illegible]

नंतर अनेक तरह की बातें करते २ सब [illegible]

षष्ट परिच्छेद ।

'हरिहर गृह ।"

दिन के एक बज गए थे—बड़ी कड़ी धूप विशुद्ध सोने की भांति झकाझक् चमक रही थी। यह कही आये हैं कि बाबू हरिहरप्रसाद का घर आनन्दपुर में था, घर की बहू बेटी, दास दासी, प्रभृति घर के कामों को समापन करके ठंढी जगह में गर्मी शान्ति करती थीं, ग्राम एक प्रकार निस्तब्ध था, किन्तु बीच २ में पेड़ों पर कौवे कर-कश चीत्कार करते थे। गृहस्थों की बहू बेटी परस्पर एक दूसरी की जूआं का शिकार खेलती २ कौवों की टांय २ से विरक्त होकर उसे सात समुन्दर पार जाने का अभिशाप देती थीं, रह २ के आकाश में मड़राती हुई चीलहों की कठोरध्वनि कानों में सुनाई देती थी, जो हो। हरिहर बाबू के घर में बड़ा गोलमाल होता था, घर तिमजिला था, अच्छा ! बाहरही से प्रारंभ हो, अब तक भी बाबूसाहब के भोजपुरिये दरवानों का भोजन नहीं निपटा था, कोई भांग घोटते थे, कोई रोटी बनाते थे, कोई खरहरी खटिया पर पड़े पड़े असभ्य गीत उड़ाते थे, कोई इधर उधर टहलते हुए पेट पर हाथ फेर के खाया पिया भस्मसात करने का उपक्रम करते थे, पांच चार आदमी [illegible] उधर की लम्बी चौड़ी बातें किस्से कहानियां और [illegible]ड़ा रहे थे।

घर के भीतर नीचे की दालान में भी बड़ा तुमुल-काण्ड उपस्थित था, दलान ठंढी थी इसलिये महल्लेवाली बहुत सी युवती और प्रौढ़ा स्त्रियां आके सिर खोल आंचल पसार के आलस्य दूर करती थी, लेटे २ बड़ी २ गप्पें हांकती थी, पहले तो प्रत्येक के खाने पकाने की बातें हुईं. कोई २ अपने रसोंई की निपुणता से गर्वित होकर बोली—'हांजी! उस दिन की मूंग की दाल तो हमसे बढ़के महल्ले भर में नहीं बनी थी'। कोई बोली –भाई हमसे अच्छी क्या कोई रसोंई बनायेगा', कोई बोली— 'उस महल्ले के उस दिन फलाने बाबू के लड़के का ब्याह न था'। बस रसोंई की बात छोड़ के अब वर की समालोचना होने लगी. देखते २ र बके सब दोष गुण बाहर निकल पड़े, फेर उत्तर ओर के एक कोने की बात उठी, कोई बोली –'भाई बड़े घर की बेटी है, उलटा पलटो खा रही है तो कोई नहीं पूछता'। कोई बोली – 'छोकड़ी की बातें सुनो तो बस –'सीता सती पारबती' – जानो बिचारी कुछ नहीं जानती दूध पीती है'। कोई बोली –'जैसा रूप तैसा गुण' कोई बोली—'ठीक तो है! बाप के गुण पर चली जाती है, बनारस जाके डाक्तरों की सहायता से पेट का दोष मिटा के फिर आके गङ्गाजल बन गई, इसी प्रकार अनेक गुरुतर विषयों समालोचना के अनन्तर सब 'हूं'!!! करती

इस समय दलान ने शान्तभाव धारण किया, किन्तु पासवाले कोठे में दो चार दासियां अनाज की महँगी के ऊपर भयानक [illegible]ता छांट रही थी, ऊपर के अनेक कमरे सूने थे क्योंकि सभो नीचेही की दालान में अड़ी थी, केवल बंगले में कौच के ऊपर हरिहरप्रसाद हाथ में पुस्तक लिये निद्रित थे, और उसके समीपवालि एक घर में किसी बालिका ने प्रवेश किया, बालिका का नाम सरला था, यह हरिहरबाबू की कन्या थी, इसका बयस तेरह वर्ष का था, किन्तु कई कारणों से अभी तक अविवाहिता थी, सरला अनाथिनो की अतिशय प्रिय सखो थी, घर में घुसतेहो पुकारा —अनाथिनो ! व्यर्थ रात दिन क्या सोचा करतो है ?'

अनाथिनी उसी घर में चिन्ताभग्न थी, इसीलिये उत्तर न दिया, सरला ने फिर हँस के कहा —'नहीं भाई ! आज से तुम्हें अनाथिनो न कह के बहू कहूंगो' 'अनाथिनी ने प्रकृतिस्थ होके कहा –

'नहीं सखो यह क्या कहती हो ? लोग क्या कहेंगे !'

सरला० – 'नहीं, भाई ! मैंतो 'बहू'हो पुकारुंगी लोगों के डर से तो मानो मर गई !!!'

ना० —'देखो ! नीचे की दलान में सब कोई बैठी हैं, तुम्हारी बेसिर पैर की बातें सुनके मनमें क्या कहेंगी?

सरला०—'मैंतो कहूहींगी --क्या ? 'बहू'! कौन नहीं जानता कि भैया के आने पर तुम उनसे व्याही जाओगी'

अना०—'तुम्हारे जो मन आवे सो कहो, सरला, बहू बनने की तुम्हे बड़ो चाव है'।

सरला०—'जाओ, मैं न बोलूंगी'।

अना०—'क्यों, सरला! खफा भई क्या ?'

सरला०—'बहू'—भई! समझी नहीं ?'

अना०—''नहीं, मैं कुछ भी नहीं समझी कहो न भई।'

सरला०—'मै तुम्हे 'बहू' पुकारती हूं और तुम मेरा नाम क्यों लेती हो ?

अना०—'ओहो! बीबी जी (ननद) कहूं क्या? ऐं! वही तो देखती हूं।'

सरला०—'अब तुम कुछ राह पर आई, मैं क्या कहती थी 'बहू ?'—

अना०—'बीबी जी मैं यह कहती हूं कि तुम्हे बहू बनने की बड़ी चाह है।'

सरला०—'किसे साध नहीं होती ? अब तक कभी की हुई रहती, वैसी बहू नहीं भई सोई अच्छा भया।'

अना०'—क्यों अभी तक तुम्हारा व्याह नहीं हुआ ?'

सरला०—'प्राय: तीन मास भये, बाबा एक बर खोज लाये थे, पर वह हमें पसन्द नहीं थे, इसलिये उन्हे ह खिलाया।'

अना०—'हवा खिलाया ? ऐहै ! । कहां का बर था ? उनका घर कहां है ?'

सरला०—'हमारे मामा के घर के पास उनका मकान है'

अना०—'तो जान पड़ता है कि वे तुम्हे अच्छी तरह जानते होंगे।'

सरला०—'खूब अच्छी तरह ! ! !

अना०—'तो फिर बिवाह करना अस्वीकार क्यों किया, री'

सरला०—'पसन्द नहीं हुआ, इसी से अस्वीकार ! ! !'

अना०—'सरले ! वह क्या तुम्हे बहुतही चाहते थे ?'

सरला०—'अब तक प्रान से ज्यादे चाहते हैं, पर मै इतना नहीं मानती।'

अना०—'तुमने जो ब्याह करना न चाहा तो वे चुपचाप चले गये होंगे ?'

सरला०—'न जाते तो क्या करते ? केवल चले नहीं गये, जाती समय कई बूंद आंसू भी यहां गिरा गये।'

अना०—'वह रोये थे ?—सरला ! यह तुमने अच्छा काम नहीं किया, आहा ! उनकी आशा को एक दम से काटना उचित नहीं था, वह तुम्हे यथार्थ चाहते थे। मै जो उस समय यहां होती तो उनसे विवाह करने के लिये तुम्हारा अनुरोध करती।'

सरला०—'बहू तुम कहीं पागल न हो जाना !'

अना०—'वह रोये थे, यह बात सुन के तुम्हारी पत्थर सी छाती नहीं पसीजी ?'

सरला०—'दया कैसी ? जिसे नहीं चाहती उसे तुम्हारा नन्दोई कैसे बनाऊं ?'

अना०—'हाय ! दया नहीं आती ? सभी क्या अभिलषित वस्तु और प्रेम पदार्थ पाते हैं ? यदि ऐसा होता तो संसार में इतना दुःख न रह जाता उन्ही के संग तुम्हे ब्याह करना उचित था, पिता जिसे ले आये थे, उसी को सादर ग्रहण करना था, विशेषतः वह तुम्हे चाहते थे, प्रेमपदार्थ न मिलने से कैसा कष्ट होता है यह तुम्हे मालूम है ?'

सरला०—'बहू विक्षिप्त भई क्या ? क्या नहीं जानती ?'

अना०—'अच्छा ! यदि वो यहां आवें, तुम्हारी खुशामद करें, तुम्हारा कुछ उपाय करें, और मैभी उनकी ओर से तुम्हारी चिबुक धर के बिनती करूं तो क्या तब भी तुम उन्हें न अपनाओगी ?'

सरला०—'बहू ! तुम उनके लिये इतना क्यों सोच करती हो ? आने के समय तुमसे बाबा ने कुछ कहा था ?'

कहके मनमें कहने लगी—

'कदाचित भैया उन्ही को खोजने गये हैं !'

फिर सरला बोली—

'हमारा वर स्थिर भया है, और उसके संग एक प्रकार विवाह हो भी गया है।'

अना०—'किस प्रकार का? भई! कुछ समझ नहीं पड़ता।'

सरला०—'कल सपना देखा था, वही जो सबेरे कहती थी कि 'सरला सती सूती क्या हँस रही हो?' याद है?'

अना०—'हां सचमुच तुम हँसती थी. कौन वा कैसा सपना देखा है?'

सरला०—'क्या कहूँ? जानतीही हो कि सरला निर्लज्ज है, देखो कल स्वप्न देखा था, मानो एक उदासीन के संग मेरा व्याह हुआ है।

अना०—"उदासीन? किसके लिये उदासीन? क्यों उनसे विवाह किया? वह स्वीकृत हुये थे?"

सरला०—"कुछ याद नहीं आती. अच्छा वह बात जाने दो बहू? भैया के आतेही तुम्हारा व्याह होगा"

अना०—'कुछ नहीं बोली'

सरला०—"बहू! व्याह होगा, खुसी क्यों नहीं हो? देखो मेरा व्याह अभी केवल सपने में भया है सो मुझे कितना हर्ष है, कि कब उदासीन आवेगा, जब स्वप्न देखा था तो यही निश्चय किया कि चाहे कोई कुछ कहै, पर मै इन्ही से व्याह करूंगी, बहू! तुमने भैया की

मोहिनी मूर्त्ति नहीं देखी है इसी से तुम्हे आमोद न
हीं होता, "पृथ्वी में कोई मनोनीत वस्तु नहीं पाता"
कहके अभी तो बहुत पण्डिताई छांटती थी, तुम मनो
नीत वस्तु पाओगी, यदि उदासीन मिले तो मैंभी इ-
च्छित वस्तु लाभ करूं, बहू! भैया का चित्र देखोगी?'
यह कहके सरला गृहान्त से एक सुन्दर फोटोग्राफ
ले आई, अनाथिनी उसे देखतेही थर्रा के मूर्च्छित हो
गई, और सरला के बहुत यत्न से चैतन्य लाभ कराने
पर वह बहुत रोदन करने लगी।

सरला०—'क्यों रोती हो? बहू! क्या दादा पसन्द नहीं हैं
ऐसी क्यों हो गई? ऐं भई! गांव की सब युवती भैया
के रूप गुण की प्रशंसा करती हैं, तुम्हे पसन्द नहीं हैं?
भई! क्यों इस तरह रोने लगीं? बोलो अनाथिनी?
क्यों रोती हो?'

अनाथिनी ने कष्ट से आंसू रोक के कहा—
'सरला' स्थिर हो, सब कहती हूं।'

सरला०—'बोलो २ चुप क्यों हो गई! क्या हुआ?'

अना०—'यह तसबीर किसकी है?'

सरला०—'क्यों? कहा तो सही कि बड़े भैया की है।

अना०—'मैंने ऐसेही एक व्यक्तिको बड़े विपद में देखा है।

सरला०—'ऐं। कैसा? कैसी विपद?'

अना०—'एक भयानक कापालिक के हाथ बंदी।'

सरला०—'कापालिक! ओ बाबा! वह तो नर बलि देता है न? भला भैया क्यों उसके हाथ पड़ने लगे, कोई दूसरा अभागा होगा।'

अना०—'सरला! मैं मिथ्या नही कहती. यदि स्मरणशक्ति विश्वासयोग्य हो यदि नेत्र विश्वासपात्र हों, तो यह प्रतिमूर्ति उन्ही की है, सन्देह नहीं।'

सरला०—'तो वही होंगे, बाबा का करम फूटा! हां भई, तुमने उन्हे कैसे देखा था? क्यों वो कापालिक के हाथ पड़े? क्या किया था?'

अना०—'सुरेन्द्र के खोजने के लिये मै उसी पथ से जाती थी, भयंकर आंधी पानी आने से समीपवाले एक भग्न गृह में घुसी, वहां सुरेन्द्र को पुकारा तत्क्षण एक युवक ने मुझे भागने के लिये कहा और बहुत बातें होने पर उन्होंने कहा कि 'अपनी भगिनी के पति खोजने के लिये जाते थे, रात को आंधी पानी और अंधेरे के कारण इसी जंगल में पथश्रम दूर करने के लिये सोए, प्रातःकाल उठ के देखा कि कापालिक के हाथ बंदी हैं।' इतना कह के अनाथिनी ने रोते २ अपने मनमें कहा—'हाय! सरला! उनकी सब बात मनमें गँठी है, उन्होंके लिये मन ऐसा दग्ध-

प्राय हो रहा है, उन्हो के अर्थ सदा सोच में डूबी रहती हूं, हाय ! क्या मेरा ऐसा भाग्य है कि वे मुझे मिलेंगे ?'

सरला०—'ठीक है वे घोड़े पर चढ़के ठीक उसी काम के लिये जाते थे, क्या सर्वनाश ! हाय ! कैसे उनका उद्धार होगा ? बाबा से कहें क्या ?'

अना०—'नहीं अभी उन से न कहो।' कहके अनाथिनी ने मनमें कहा—'इतने दिन हुए, हाय ! अबतक क्या वे इस संसार में जीते जागते होंगे ? हा !'

सरला०—'तो, भई ! कौन उपाय करना चाहिए ?'

अना०—'देखो ! आज रात को मै अकेली वहां जाय के कापालिक की बिनती करके उन्हे छुड़ा लाऊंगी, ऐसा विश्वास होता है।

सरला०—'नहीं २ मैभी तुम्हारे संग चलूंगी, मै जो यहां रहूंगी तो बाबा तुम्हारा हाल पूछेंगे, तब मैं क्या कहूंगी ? मैभी संगही चलूंगी. और देखो राह में एक आदमी जरूर संग चहिए। प्रेमदास रसोंइयें को ले लें ?

अना०—प्रेमदास पथकष्ट सहना स्वीकार करेगा ?'

सरला०—'प्रेमदास विवाह के लिये इतना पागल है कि हद से ज्यादे, वह भी किसी पर मरता है, बस जहां

कहा कि 'प्रेमदास चलो ब्याह करा दूंगी' बस इसे सुनके सब दुःख सह लेगा। पर है वह बड़ा डरपोंक'

अना०—'हां! वह तो पोंगा हई है, उसका संग रहना अच्छा होगा, पर प्रेमदास को यह वृत्तान्त न मालूम होय।'

सरला०—'अच्छा'।

अनन्तर दोनों चुपचाप घर में तयारी करने लगी। रात के आठ बजने पर अनाथिनी सरला और प्रेमदास घर से चले।

सप्तम परिच्छेद।

पान्थनिवास।

आनन्दपुर से सात कोस उत्तर एक पान्थनिवास (धर्मशाला) था. पहिलेही से तीन पथिक ने आकर उसकी तीन कोठरी छेंक ली थी, और थोड़ी देर के पीछे सदर-द्वार बन्द हो गया था. दो पहर रात गई होगी, इस समय धर्मसाले की स्वामिनी 'सुबदना' की कोठरी बन्द थी। उसमें बाहर से किसी ने धक्का मारा, सुबदना ने जल्दी द्वार खोल दिया, और देखा कि दो स्त्री और एक तीस वर्ष का युवक खड़ा है, इन तीन जनों को पाठकों ने चीन्हा होगा। सरला, अनाथिनी और प्रेमदास!!!

प्रेमदास अभीतक क्वारे थे, अर्थाभाव से कैसे व्याह होय ? तिसपर वह एक सुन्दरी पर मरते थे, और वह आधी बिधवा थी, तथा जानती भी नहीं थी कि "मुझ पर प्रेमदास का प्रेम है" अस्तु प्रेमदास का चरित्र सर्वथा सुन्दर था, ये कभी २ हरिहरबाबू के यहां रसोई करते, परन्तु प्राय: घर के मन्दिर में नारायण की पूजा किया करते थे, वह अपने कुटुम्ब मे अकेले थे ।

प्रेमदास मार्ग के श्रम से बहुत थक गये थे, पर उन्हे सरला का वह सरलवाक्य 'चलो तुम्हारा व्याह करा दूंगी' आकर्षण करके यहां तक पीछे २ लाया था, स्थान आदि स्थिर हुआ, और यह निश्चय हुआ कि सरला और अनाथिनी कोठरी के भीतर और प्रेमदास बाहर सोवें, सुबदना का सुबदन देख के प्रेमदास चौंक उठे, यही इनकी अभिलषित आकाशकुसुम थी, उसे देखतेही पथश्रम तो हवा हो गया, प्रेमदास ने बिचारा कि 'सरला कोई देवी का अवतार है, अहा ! सुबदनाही अब मेरी गृहिणी होगी, इसीसे देबी सरला सुन्दरी यहां मुझे ले आई हैं, वाह ! क्या आज की रात व्याह होगा ?' प्रेमदास अति घने सस्मित कटाक्ष सुबदना के बदन के ऊपर बरसाने लगे, निर्निमेष लोचनों से मानो लील जांयगे, सुबदना रसिका होने पर भी सच्चरित्रा और परिहासप्रिया थी, यद्यपि अभी इसकी पचीस वर्ष की उमर हो गई थी, तोभी नहीं जानती थी

कि पुरुषसहवास किस चिड़िया का नाम है, अस्तु वह भी प्रेमदास का कुछ प्रेम जानती और उन्हें अच्छी तरह पहचानती थी, इसलिये वह भी प्रेमदास की ओर प्रेम पूर्वक निहारती और मुसकाती थी. सुबदना सरल हृदया और दयालु थी, उसने सरला और अनाथिनी की उपयुक्त सेवा की, उसने इन लोगों के आने का – इतनी रात को इस तरह आने का मतलब नहीं पूछा, अच्छा किया। पूछने पर भी यथार्थ उत्तर नहो पाती, क्योंकि सरला और अनाथिनी ने मनोरथ सिद्ध होने के पूर्व अपना कृत्य गुप्त रखने का संकल्प कर लिया था, और ऐसी अवस्था में ऐसा ही करना बुद्धिमान का काम है। अनाथिनी चुपचाप स्वयं सोचती थी कि 'किस तरह सब से छिप के पूर्वोक्त भग्न गृह में जायं "क्योंकि सरला को उस भयानक स्थान में संग ले जाना अनाथिनी की इच्छा नहीं थो, क्योंकि आनाथिनी ने मनही मन संकल्प भी किया था कि 'यदि बंदी जीते हों, और उन्हें स्वयं उद्धार न कर सकूं तो फिर यह मुंह लेके हरिहरप्रसाद के घर न फिरूंगी और यदि ईश्वर न करे बंदी को कुछ होयगा हो तो तत्क्षण प्राण त्याग दूंगी"।

प्रेमदास ने सोचा कि "कोई २ व्यक्ति नायक के पास नायिका को लाय के आप वहां से हट जाते हैं, साहत

सरला और अनाथिनी का यही मतलब होगा, जो हमे अकेले बाहर रहने दिया, ठीक यही बात है, जान पड़ता है कि भीतर दोनों सो गई होंगी, तब तो सुबदना हमारी महिषी है, तो हम घर के बाहर क्यों बैठे रहैं ? और सुबदनाही भीतर क्यों है ? हम पुरुष और सुबदना स्त्री है, यदि सुबदना स्वयं हमारे पास आवै तो भला - पहिले कौन बोलेगा ? हम बोलेंगे, क्यों ? हम तो नायक हैं न ? इस समय रसिकशिरोमणि सुबदना सरला के संग चिन्ता मग्न प्रेमदास के पास आई, प्रेमदास ने सरला को भी संग देख के उससे आग्रह से कहा: -

"क्यों सरला ! इतना कष्ट उठाय के सब छोड़ छाड़ के यहां तक आए पर तुमने जो कहा था" —

सरला० — "प्रेमदास ! देख लो । यह बहू पसंद है न ? यही तुम्हारी महिषी होंगी" ।

प्रेमदास — "यही होंगी ? ऐसा हमारा पाटी सा भाग ! एँ ? तुम इन्हें हमारे पास शायद इसीलिये ले आई हो ?"

सरला० — "हां जी ! इसमें संदेह क्या है ?"

प्रेमदास० — "सो कुछ नहीं, इन्हे तो हम जन से क्या मा के पेटही में से चाहते हैं, अच्छा, यह महिषी हैं, और हम नायक सुतरां महिष ! ! !"

सुबदना ने — हँस के सानुराग कहा: —

'तुम्हारा नाम क्या ? प्रेमदास ! वाह खूबही नाम है,
जो तुम्हे चाहै उसी के दास ! ! ! "

प्रेमदास ने – दीर्घ निश्वास त्याग करके कहा: –

'सचमुच, जो हमे चाहै, हम उसी के क्रीतदास चिर-
दास अनन्यदास असंख्यदास ! ! ! "

सुबदना० – "प्रेमदास ! दीर्घ निश्वास क्यों लिया ?"

प्रेमदास० – "यही कि हमारे ऐसे अभागे को आज तक
किसी ने नहीं चाहा, इसी लिये दीर्घ निश्वास त्यागा,
हां तुम्हारा नाम !"

सुबदना० – "हमारा नाम क्या भूल गये ? सुबदना ! ! !"

प्रेमदास० – "अहा ! यह नाम तो हृदय में चिरकाल से
लिखा है, भूल गये, क्षमा करना ।"

सरला, – प्रेमदास का सुबदना पर प्रेम का हाल कुछ भी पहिले से नही जानती थी, और वह प्रेमदास को निरा भोंपू समझती थी इसलिये ब्राह्मण के संग परिहास करने और आश्वास देने के लिये सुबदना से बिशेष अनुरोध कर के अनाथिनी के पास जा सोई, सुबदना रसिका थी, यह तो कही आए हैं, प्रेमदास के मनस्तुष्टि के लिये हास परि-हास करने लगी, सरला के टल जाते देख प्रेमदास ने संचही बिश्वास किया कि सरला सुबदना को हमारी मन परीक्षा लेने को अकेले में छोड़ गई है, कुछ २ कानों में

भी तो कहा रहा ? प्रेमदास ने जो जनम से सुबदना को प्राण से भी अधिक हृदय से चाहा था इसका प्रवलतम प्रमाण देने लगे।

प्रेमदास "सुबदना आहा क्याही नाम की सुंदर परिपाटी है यथार्थही सुबदना सुबदना !!! सुबदना और प्रेम दास दोनों के नाम मे चारहो अत्तर हैं।"

सुबदना०—"प्रेमदास! तुम बड़े रसिक पुरुष हो तुम क्या हमे अपनाओगे, ऐसा मेरा भाग !!!

प्रेमदास०—"मैं रसिक हूं? ठीक! बिबाह नहीं भया है पर उसके लिये जनम से रसिकता सीख रक्खी है पर हमे किसी ने नहीं अपनाया सबने दूर किया. इससे रसिकता कुछ भूल गये होंगे सरला सहसा हमे व्याह का भरोसा देके ले आई है—

रसिकता सीखने का समय नहीं मिला, मन में जो "अनाप दानाप" आता है बक्ते हैं।"

सुबदना०—"क्या कहा! व्याह नहीं किया निकाल बाहर किया! क्या सर्बनाश! किस अभागिनी ने ऐसा किया! कौन अभागिन प्रेमदास को बिबाह करने से पीछे हटी! ओः! समझा! दूसरी तुम्हे जकड़ती तो हमारा भाग कैसे खुलता! इसी २ लिये किसी ने तुम से व्याह नहीं किया।"

प्रेमदास॰—"तुम हमारी होगी? ऐसा क्या हमारा भाग है? वो दिन कब आवेगा?"

सुबदना॰—"स्थिर हो! पहिले तुम्हारा मन खोल लें पीछे और बात होगी, प्रेमदास! तुम क्या हमे जी से चाहते हो?"

प्रेमदास॰—"सुबदना! जिस दिन पहिले पहिल तुम्हें देखा था, उसी दिन से तुम्हे दिल से चाहते हैं, हम जनेऊ (यज्ञोपवीत) की शपथ खाके कहते हैं कि तुम्हे हम प्राण से भी अधिक प्यारी समझते हैं।"

सुबदना॰—"तुम ब्राह्मण हो! अभी तक नहीं समझे कि हम तुम्हारे स्पर्श योग्य नहीं है! ओ बाबा!! ब्राह्मण अग्नि तुल्य है इसलिये मैं तो भागती हूं!"

प्रेमदास॰—"सुबदना! तो मै भी ब्राम्हण नहीं हूं, विश्वास न हो तो परीक्षा कर लो, जो कहो तो हम इस जनेऊ को अभी तोड कर फेंक दें, जो कहो तो हम डुग्गी पिटवा दें कि प्रेमदास आज से ब्राह्मण नहीं है।"

सुबदना—"तुम निश्चय ब्राह्मण नहीं महाब्राम्हण हो यह देखो तुम्हारे माथे में त्रिपुण्ड लगा है।"

प्रेमदास॰—"हाय! आज हमारे सभी शत्रु हो गये, प्यारी सुबदना! पहले से जो हम जानते—क्षमा करो २"

सुबदना हां! तुम कौन बंश जात हो?"

सुबदना॰—क्यों! कुलीन ब्राम्हण की मै लड़की हूं।

प्रेमदास॰—"हम भी तो वही हैं, ऐसा न होने से हमारा आर्य मन तुमपर क्यों आशक्त होता? सुबदना! तुम्हारा मन हमसे राज़ी है?"

सुबदना॰—"प्रेमदास! हमारे चरित के सम्बन्ध में लोग बहुत छिद्र देखते हैं, तुम क्या हमे ग्रहण कर सकोगे? किन्तु हां तुम हमारे मनोनीत हो।"

प्रेमदास॰—"चरित्र छिद्र विशिष्ट"—यह हम नहीं मानते, जो हो! हम तुम्हे आदर के सहित हर्ष पूर्वक ग्रहण करेंगे"।

सुबदना॰—"ब्याह करके हमे कहां ले जाओगे? कैसे हमारा भरण पोषण करोगे?"

प्रेमदास॰—"सुबदने! घबड़ाओ मत, हरिहर बाबू हमे बहुत मानते हैं, हमे भारवाही देख के घर द्वार जरूर देंगे, और कुछ सोच न करो, ठाकुरजो का भोग तुम्हीं को लगा देंगे।"

सुबदना॰—"तो तुम हमे वस्तुत: खूब चाहते हो! हां पहिले जिस्से बिबाह करने गए थे, वह देखने में कैसी थी?

प्रेमदास॰—"कैसी थी! अमावस्या की रात्रि की तरह घोरमसी तुल्य बर्ण, बिल्ली सी आंख, शृगाल सम मुख, और कहां तक कहें, ऊपर नीचे सब गोलमाल।"

सुबदना०—"प्रेमदास! शान्त हो! समझा! उसको ब्याह के लिये कितना रुपया ले गए थे?"

प्रेमदास०—"असंख्य!!! ब्याह का नाम सुनतेही घर द्वार खेती बारी सब बेंचबांच के जो कुछ आया सो श्री चरण में चढ़ाने के लिये ले गये थे, पर तौभी बुरी तरह निकाले गये।"

सुबदना०—अच्छा वो रुपये अब कहां है०?"

प्रेमदास०—"एक पुराने पीपल के पेड़ के नीचे गाड़ रक्खा है, इसलिये कि उसे देख के ब्याह की याद आ जाती थी"

सुबदना०—"अच्छा प्रेमदास! सब बात पक्की भई, अब तुम सूतो हम जांय।"

प्रेमदास०—"जाओगी? अपने अंचल में एक गांठ लगालो, जिस्में हमारी बात की याद बनी रहे।"

सुबदना—"यह देखो गांठ लगा लिया, कल सबेरे फिर हमलोगों की बातचीत होगी, दिन ठीक किया जायगा तो हम जांय? दण्डवत २! सूतो २! बहुत रात बीत गई है।

सुबदना के मिष्टालाप से प्रेमदास अत्यंत सन्तुष्ट हुए हर तरह की शुभ चिन्ता का मन में आंदोलन करते २ निद्रित हुए, सुबदना भी सरला के समीप जाय के सोई, सब को निद्रित जान के चिन्ताकुल अनाथिनी निज कर्तव्य कर्म सिद्ध करने लिये उठी, और धीरे २ कापालिक के भग्नगृह की ओर चली।

अष्टम परिच्छेद ।

(तरुतल)

मार्ग में अनाथिनी कुछ देख के स्तंभित हुई, देखा कि एक पेड़ के नीचे कोई मनुष्य सो रहा है, जलदी २ उस पथिक के पास गई, चन्द्रमा की स्वच्छ चांदनी में निद्रित पुरुष के सब शरीर में "सरला सरला" लिखा था, "सरला" का नाम देख के अनाथिनी ने सोचा कि "जान पड़ता है कि यही व्यक्ति मेरी सरला के लिये पागल अथच उदासीन है, अहा ! सरला इसके प्रेम को सामग्री है इस प्रेम प्रतिमा को न पाय के यह उदासीन हुए हैं, यथार्थही उदासीन !!! अहा ! संसाराश्रम छोड़ के बन २ की धूल उड़ाते फिरते और दिन बिताते हैं "

हाय ! स्त्रीजन क्या इतनी निठुर होती हैं ? अबला का हृदय ऐसा बज्र होता है ? रमणी का प्राण इतना कठोर है ? यदि सरला आती तो उसे दिखाती कि तेरे प्रेम से बञ्चित होके एक व्यक्ति ने उदासीन वृत्ति धारन की है कितनी स्त्रियां पुरुष के लिये पागल हो जाती हैं, चाह के पात्र को न पाय के उन्मादिनी होती हैं, मैं यहां क्या कर रही हूं ? उपकार करने वाले हरिहर प्रसाद के पुत्र का उद्धार करने आई हूं, मैं क्या उन्हें चाहती हूं ? हां !!! यह तो मन में संकल्प किया है कि यदि उन्हें न पाऊंगी

तो पागलिनी बन के प्राण छोड़ दूंगी, वा जंगल पहाड़ों में जहां तहां डोला करूंगी, हां ! उदासीन यहां क्यों आये ? यह क्या बंदी का कुछ हाल जानते हैं ? इनसे पूछें क्या ? यदि उठके कहें -"बंदी तो कात्यायनी के चरण में बलि हो गया. अब इस पापमय पृथ्वी में नहीं है" हा ! तब मैं कहां जाऊंगी ? यदि कभी सरला से भेट हो तो क्या कहूंगी ? जो कहीं हरिहर बाबू के संग साक्षात् हो तो क्या जवाब दूंगी ? उदासीन को सोने दो, भग्न गृह पासही तो है, पहिले वहीं चलूं, बंदी के भाग में वा मेरे कर्म्म में क्या बदा है, इसे देखूं, व्यर्थ किसी की नींद क्यों खोलूं ?"

इसी तरह सोचते २ उदासीन को बिना जगाये अनाथिनी जल्दी से अग्रसर हुई, और भग्न गृह के समीप पहुँची, घर के भीतर जायके देखा कि सब घर सूनसान पड़ा है, जिसमें बंदी था, वह भी खुला झनझना रहाहै, कापालिक का भी कुछ पता नहीं है, बंदी को न देख के अनाथिनी पागल की तरह हो गई, 'हा ! बंदी कहां गया और कापालिक किधर गया?' इत्यादि सोच विचार करती २ जोर से चिल्लाय के पुकारने लगी "बंदी कहां है ? बंदी कहां है ?" किसी ने कुछ उत्तर न दिया, केवल टूटे खँडहर ने प्रतिध्वनि से उत्तर दिया, भग्नगृह कुछ अँधेरा था, अनाथिनी को ऐसा जान पड़ा कि मानो एक कोने में बंदी

बँधा खड़ा है, मानो कारागाराही में से मुझ से बातें कर रहा है, मानो अपनी हथकड़ी बेंड़ी दिखा के उसे तोड़ देने का अनुरोध कर रहा है, अनाथिनी जो उस कल्पना क्षत बंदी के पास गई तो कहीं कुछ नहीं!!! केवल कल्पना मात्र रही, उन्मत्त की तरह बकती झकती टूटे फूटे मन को बटोर के अनाथिनी भग्न गृह से बाहर हुई, और उसी वृक्ष के नीचे आई जहां उदासीन सोता था, किन्तु हा! अब वह उदासीन कहां चला गया? उदासिनी के मन में बड़ा दुःख हुआ कि "यही उदासोन को जगाय के क्यो न सब हाल पूंछ लिया? और सरला का समाचार सुनाय के क्यों न उसकी उदासीनता दूर की? इस समय बंदो का बिषय भूल के वह उदासीन की खोज में इधर उधर भटकने लगी, किन्तु फिर सोचा कि 'सायद उदासीन पांथनिवास में जाय के सरला से मिल गया होय!" यह सोच समझ के पांथनिवास की ओर चली. थोड़ी देर में वहां पहुंच के बहुत घबरा गई, क्योंकि किसो ने आग लगा दी थी और पांथनिवास भस्म हो रहा था अग्नि सुबदना की कोठरी तक पहुंच गई थी, पर अनाथिनी जो पर खेल के भीतर घुस गई और सब कोठरी देखा, पर सभी खाली पड़ी थी, अनाथिनी के मन से अब उदासीन की सभी चिन्ता दूर हुई। केवल सरला सुबदना और प्रेम-

दास की दशा क्या हुई इसी सोच में अतिशय कातर होने लगी, अनाथिनी ने विक्षिप्तप्राय होकर चिल्ला के पुकारा —

"सरला सरला! प्रेमदास २! सुबदना !!!" इसी समय न जाने किसने पीछे से उसका अंचल खींच के चंचल हो के पूछा: —

"सरला! सरला कहां है? कहां है सरला?" अनाथिनी ने मुख फेर के देखा "वही उदासीन !!" अनाथिनी क्या उत्तर देती? ठहर के उदास हो कर बोली — "सरला इसी घर में थी, इस समय दूसरी जगह गई है" उदासीन ने आग्रह से पूछा: —

"कौन सरला? हरिहर बाबू की कन्या?"

अना० — "हां! वही।"

अनाथिनी का प्रत्युत्तर सुन के उदासीन हर्षित हुये, इसी समय एक क्षीणस्वर दोनों के कानों में गया, दोनों उसस्वर को लक्ष्य करके दौड़े, और जाय के देखा कि —

"हाथ पैर बँधा हुआ एक व्यक्ति पड़ा है।"

"यह कौन है?" दोनों ने चीन्हा अनंतर यत्न के सहित उसे एक निरापद स्थान में ले गये।

नवम परिच्छेद।

(देवमंदिर)

सुबदना प्रेमदास और सरला ने घर को जलाना देख के अनन्योपाय होकर पान्थनिवास से भाग गए, अनन्तर समीप बर्त्ती देव मंदिर में आश्रय लिया था, इस मंदिर में श्रीराधाकृष्ण की युगल जोड़ी बिराजती थी. अब तक आकाश में चन्द्रमा चमकता था, सरला सोंच में डूबी थी कि "अनाथिनी कहां है? वा क्या अपने काम में सफल मनोरथ हुई?" सुबदना चिन्ता करती थी कि "किसने मेरे पान्थनिवास में डाह से आग लगाई?" प्रेमदास बिचारते थे कि "अब हमारे सहित सुबदना क्यों नहीं हास बिलास करती?"

सबेरा हुआ—प्रेमदास मंदिर में जाय के श्रीराधाकृष्ण के दाम्पत्य सद्भाव की महिमा मन में सोचते थे, बिचारा कि "सुबदना के संग जो हमारा इस प्रकार मिलन हो तो हम कितने सुखी होंगे?" यही सोचते २ छिप २ के सुबदना की ओर देखने लगे, फेर राधा और कृष्ण का मन में स्मर्ण करके भक्ति से प्रणाम किया, धीरे धीरे सूर्य्य की असंख्य किरणों से पृथ्वी छा गई, और प्रेमदास मारे भूख के बिकल होने लगे, ठाकुर के पुजारी का घर पास ही था प्रेमदास उनसे चावल दाल आदि सामग्री भीख

मांग के एक पेड़ के नीचे रसोईं बनाने लगे, पहिले सरला और सुबदना को भोजन कराया पर जी काँपता था कि "कही हमे थोड़ा न [illegible]वे।" किन्तु इनका भाग अच्छा कि उन दोनों ने थोड़ाही खाया पीछे आड़ में पाल थी जमाय के सब सामग्री पेटरूपी विशाल गड़हे में ठूँस लिया, अब सूर्य्य देव मध्याकाश में पहुंच गये थे, भोजन करके प्रेमदास ने बड़ी खोज खाज पर एक तलाव देखा, और देह मांजने के लिये उसमें कूद पड़े। सरला और सुबदैना की अनेक चिन्ता दूर हुई, क्योंकि उसी समय वहां पर अनाथिनी पहुंच गई थी।

पहिले तो सरला का मुंह सूख गया, फेर डरते २ अपने भाई का हाल पूछा, अनाथिनी ने कुछ उत्तर नहीं दिया किन्तु खिलखिला के हँसने लगी। इतने दिनों में आज अनाथिनी के मुंह पर हँसी दिखाई दी। सरला ने आह्लादित हो के पूछाः—

"भैया कहां है? क्या उन्हें छुड़ा लाई? ऐं! जहां देखा था वहीं थे? किस अवस्था में थे? कापालिक ने कैसे छोड़ा?"

अनाथिनी ने सब बातों का उत्तर केवल एक अक्षर से दिया "ना!" सरला ने उत्सुक हो के पूछाः—"भैया कहां थे, और अब कहां हैं?"।

अना०—"कहां थे! जहां हमलोग थीं वहीं"।

सरला—कुछ चञ्चल हो के बोलीः—

"अरी! मेरे तो प्रान गये तुम्हें हँसी सूझी है! इस समय हँसी को ताक पर धर दे, देख तो सही! छोकड़ी ने भतार पाय के रसिकता की पराकाष्ठा दिखा दी!—बोल री बोल जल्दी! भैया कहां हैं?"।

अनाथिनी ने फिर हँस के कहा:—"पान्थ निवास की जिस कोठरी में हमलोग थीं, उसी के बगल में वे थे"।

सरला—वहां उन्हें कौन लाया? कापालिक के हाथ से किसने छुड़ाया?"

अना०—एक उदासीन ने कापालिक के हाथ से उनका उद्धार किया।

सरला—"कौन उदासीन? और कैसे छुड़ाया?"

अना०—"एक दिन वे उदासीन कापालिक के भग्नगृह के पास भ्रमण करते थे, रात्रि भीषण मूर्त्ति धारण किये बन में राज्य करती थी, उसी समय उन्होंने देखा कि भागीरथी के किनारे एक कात्यायनी देवी की मूर्त्ति स्थापित है, और उसके पदतल में एक अभागा शृङ्खलाबद्ध औंधा पड़ा है, और देवी के सामने आसन मारे कापालिक ध्यान में मग्न था, उदासीन बन्दी को चीन्हते थे, उसकी भयानक विपद देख के उनका मन

भर आया, और धीरे से उस बन्दी को गोद में उठा के वहां से ख[illegible] दिये, और कापालिक को खूबही धोखा दिया"

सरला—"भई! उदासीन कौन? कहां है? अहा! उदासीन बड़ा उपकारी है, क्या व बन्दी मेरे भैयाही हैं न?—हां फिर?"

अना०—"फिर उदासीन उन्हें ले के जंगल से बाहर होते थे कि सहसा कोई बन्दी को उनसे छीन के अदृश्य हो गया, दो डाँकू थे।

सरला—"वे दोनों कौन थे? और क्यों भैया को हर ले गये?"

अना०—'उदासीन से विदित हुआ कि वे दोनों मुसटंडे रामशङ्कर और मजिष्ट्रेट का घाती फकीर था"।

सरला—"रामशङ्कर! क्या सर्वनाश!। वह तो बाबा का जात शत्रु है वह यहां कैसे आया?

अना०—"जब से मजिष्ट्रेट मारे गये, तब से रामशङ्कर और वह फकीर जंगलों में छिपे डोलते हैं"।

सरला—"वे दोनों भैया को कहां ले गये? क्या किया?"

अना०—"उनका दोनों हाथ पांव बाँध के सुवदना के पांथनिवास में रक्खा था, पीछे हमलोग वहां गईं थीं"।

सरला—"ठीक! कल संझा को तीन आदमी वहां आय

के तीन कोठरियों में टिके थे, यह तो सुना था, और देखा भी था कि एकजन का ह पैर बँधा था अच्छी तरह नहीं देख सकी. हाय ! ं दुष्टों ने पांथनिवास में आग लगाई थी ?"

अना०—"हां उन्हीं दुष्टों ने तुम्हारे भाई के सर्वनाश करने के लिये पांथनिवास में आग लगाई थी"।

सरला—"हां भाई ! अब भैया कहां हैं ?"।

अना०—"सरला ! भग्नगृह से आकर देखा कि पांथनिवास जलता है, मैंने भीतर जाय के तुमलोगों को वहां नहीं देखा, बाहर आकर तुम्हारे भाई का आर्तनाद सुना, उदासीन की सहायता से तुम्हारे भाई को एक निरापद स्थान में रख आई हूँ, उनका कोई अनिष्ट नहीं भया है, उदासीन के अनन्त यत्न से उन्होंने आरोग्य लाभ किया है पालकी भाड़ा करके उन्हें घर भेज के तुमलोगों को खोजने यहां आई हूँ"।

सरला—"आह ! प्रान बचे, भई ! सखी ! तुम धन्य हो, भावी पति के उद्धार के लिये तुमने क्या नहीं किया? अच्छा ! वो हमलोगों के परम उपकारी उदासीन कहां हैं ? अहा ! वह क्यों उदासीन भये हैं ?"।

अना०—"अपनी चाह की वस्तु नहीं पाने से इस कोमल सुकुमार वय में उदासीन हुये हैं"।

सरला—"वह किसे चाहते हैं ?" ।

अना०—"किसे च[illegible] हैं?"—एक सामान्य उदासीन की बात पूछ के [illegible]या करोगी ? ।

सरला—"वाह भाई ! क्यों न पूछें, वे हमलोगों के परम उपकारी हैं, यदि उनका तिल भर भी प्रत्युपकार कर सकें तो अपने को धन्य समझें" ।

अना०—"तुम उनका अशेष उपकारकर सक्ती हो परन्तु"—

सरला—"परन्तु"—क्या ? अनाथिनी ! बताओ, मैं कैसे और कौन सा उनका उपकार कर सकती हूँ ।

अना०—"तुम अवश्य करोगी ?" ।

सरला—"करूँगी, प्रान जो देना पड़े तो वह भी—"

अना०—"स्वीकार करती हो न ? केवल प्रान नहीं देना पड़ेगा, मन और प्रान दोनों" ।

सरला—"यह क्या ? अनाथिनी ?" ।

अना०—"तो फिर प्रतिज्ञा क्यों किया ? अब उनकी अभिलाषा पूर्ण करो !"

यह कहती हुई अनाथिनी मन्दिर के बाहर आई और थोड़ीही देर में उदासीन को संग लेके भीतर गई ।

अनाथिनी ने उदासीन को निश्चय करा दिया था कि 'सरला से जरूर तुम्हारा परिणय होगा, इससे उदासीन भाव मिट गया, और सरला से मिलने के लिये अनाथिनी

के संग मन्दिर में आये थे, अनाथिनी ने उन्हें एक निभृत-निवास में थोड़ी देर के लिये छिप[illegible]ा था, और सरला के मन की परीक्षा लेने के लिये [illegible]न्दिर में गई थी अब सरला के चित्त का मर्म्म जान के और पहिला गर्व दूर भया देख के उपकारी की वाञ्छा पूरी करने के लिये यत्न करने लगी।

उदासीन को देखतेही सरला थर्राय के स्तम्भित हो गई, "अहा यही व्यक्ति जिसे पहिले अनादर करके बिदा कर दिया था, मेरे लिये उदासी है? यही हमारे प्रेम के भिखारी हैं? यही सहोदर भाई के उद्धारकारी हैं? धन्य भाग्य!" अनाथिनी सरला की अदृष्टपूर्व लज्जा देख के हँस के बोली:—"सरला अपने पागल की इच्छा पूरी करो यह तुम्हारे प्रेमाकांक्षी हैं, उस दिन इन्हीं को न स्वप्न में देखा था? स्वप्न में इन्हीं से न विवाह किया था? यह तुम्हारे सच्चे पति हैं, पहिले जो अज्ञानता से इनके संग खोटा व्यवहार किया था, चरन थाम के उसे क्षमा कराओ. सरला! देखो! अपनी प्रतिज्ञा न भूलना, जो अभी की थी" सरला ने लज्जा से घूँघट पट में मुख छिपा के अपनी प्रतिज्ञा की सत्यता "मौनं सम्मतिलक्षणं" से दिखा दी और आनन्दाश्रु के संग रोमाञ्च हो आये, सरला ने मनही मन कहा "मै अपनी प्रतिज्ञा जरूर पूरी करूँगी"।

अनन्तर सब ने चलने की तयारी की पर प्रेमदास बाजार गये थे, इसी रना पड़ा।

दशम परिच्छेद।

प्रेम प्रसंग।

सब परम आह्लादित हुये, अनाथिनी छल करके टल गई थी, एकान्त में सरला और सुजनकुमार से जो प्रेम-सम्भाषण भया उसे लिखने का हमारा अधिकार नहीं है, यदि हृदय हो तो प्रेममयी प्रियपाठिका समझ लें।

(सुबदना एक ब्राह्मण की कन्या थी, उसकी जब सात वर्ष की अवस्था थी, तो उसके विवाह की बात ठहरी किन्तु अभाग्यवश सब बात पक्की होने पर ब्याह होने के) एक दिन पहिले उसका भावी पति परलोक सिधारा, अनन्तर जाति के कट्टर और पुराने टाइप के बकधार्मिक सुबदना की माता के ऐसे विपक्ष भये और बार धमकाने लगे, कि "यदि अब इस लड़की का पुनर्विवाह करेगी तो जात से काट देंगे, यह विधवा हो गई" इत्यादि २ असभ्य बातें सुन के सुबदना की मां नितान्त म्रियमाण हुई पर क्या करती और सुबदना से ब्याह कौन करता? यह कौन सुनता व मानता कि "पतित्वं सप्तमे पदे" के अनुसार सुबदना अभी बिलकुल क्वारी है और केवल वाग्दान भर

हुआ है, खैर। सुबदना की मां अनाथ एकादश वर्ष की कन्या छोड़ के मर गई, सुबद[illegible] लिखी और धर्म्म-भीरु थी, उसने प्राणपण से अ[illegible] की आज ताईं रक्षा की, इसीसे हमने सुबदना को अर्द्धविधवा लिखा था।

सुबदना पहिलेही से प्रेमदास को मनही मन चाहती पर भय से बात प्रगट नहीं करती थी, आज दैवी घटना से ऐसा समय आया कि सब बात खुल गई, और प्रेमदास ने भी शास्त्र रीति से उससे व्याह करना स्थिर किया, सु-बदना अद्वितीय सुन्दरी होकर जो एक साधारण रूप और विद्या सम्पन्न अथच दरिद्र प्रेमदास के ऊपर निछावर हो गई इसे केवल सच्ची चाह की महिमा जाननेवाली सहज ही अनुभव कर लेंगी।

सुबदना प्रेमदास की बाट देखती हुई बाहर बैठी थी, थोड़ी देर में भयानक चीत्कार करते २ प्रेमदास भागते २ काँपते २ हाँफते २ सामने उपस्थित हुये!!! उनके इस अलौकिक काम से सभी चमत्कृत हुये, सुबदना ने हँस के पूछा:—"क्यों! जी क्या बात है?"।

प्रेमदास सुबदना की ओर देख के काँपते २ बोले:— "हम जब पुष्करिणी में नहाने गये थे, उसी समय दो सवार!—हाय भयानक तरवार की वर्षा!!! बड़े बली— और और—"

सुबदना—"अश्वारोही ?—क्या कहा ? घबड़ाओ मत स-म्हल के धीरे २ [illegible]

प्रेमदास—"उन्होंने [illegible] था कि रामशङ्कर को जानते हो ? वो कहां है, कह सकते हो ?"

सुबदना—"तो उन्होंने इतनाही पूछा, तुम तब इतना काँपते क्यों हो ?"

प्रेमदास—"सुबदना ! वो डाँट २ के हम से पूछते थे दूसरा कोई होता तो उन यमदूतों के आगे से जीता जागता न फिरता"।

सुबदना ने हँस के कहा:—"तो तुम कैसे फिरे ?"

प्रेमदास—"हमारा श्रेष्ठ कुल में जन्म, हम ब्राह्मण हैं, वो दोनों यवन थे. क्या सर्वनाश ! ! !

सुबदना—"तो तुम्हें ब्राह्मण जान के छोड़ दिया ? ऐं !"

प्रेमदास—"बस और क्या ?"।

सुबदना—"प्रेमदास तुम तो साहसी हो, अब तुम्हारी हिम्मत क्या हुई ? अस्तु तुमने क्या उत्तर दिया ?"।

प्रेमदास—"सुबदना पहिले हमे बहुत साहस था, किन्तु; हमने कहा कि मै रामशङ्कर को नहीं जानता, वो मेरा कोई नहीं है, मैंने उसे देखा भी नहीं उसने भी न देखा होगा"।

सुबदना—"प्रेमदास ! तुम तो बड़े भूठे हो, रामशंकर तो तुम्हारे मालिक का बैरी है न ?"।

प्रेमदास –"सच कह के प्रान थोड़ेही देना था ।"

सुबदना – वे पुलिसवाले होंगे [illegible] उन्होंने क्या कहा ? और कहां गये ?"

प्रेमदास –"वे हमारी बात सुन के खिलखिलाय पड़े और जङ्गल की ओर चले गये ।

सुबदना –"तो तुम इतना क्यों चिल्लाते थे ?" ।

प्रेमदास –"मैंने समझा कि तुम्हें तो वे नहीं उठा ले गये! और आते २ उनके डर से चिल्लाया था ।

सुबदना –"तो ऐसे डरपोक से मैं व्याह न करूँगी" ।

प्रेमदास एकाएक म्रियमाण होकर बोले: –"तो अब जम से भी न डरेंगे" ।

सुबदना ने हँस के कहा: –"तो करूँगी" ।

प्रेमदास का मुख कुम्हिलाय के सहसा खिल गया, सुबदना के हर्ष की सीमा न रही उसने अपने हँसौड़ स्वभाव के लायक अच्छा पात्र पाया, अनन्तर सुबदना प्रेमदास के संग प्रेम की बातें करने लगी ।

उदासीन और सरला की बात सुन के प्रेमदास बड़े खुश भये, और सरला से हँस के बोले कि "देवो हमें बर देने से तुम्हें भी तुरन्त बर मिला" प्रेमदास की बातों से सभी प्रसन्न होते थे, अनन्तर सब कोई राधाकृष्ण को दण्डवत् करके चले, सरला ने सुबदना को भी संग ले लिया ।

एकादश परिच्छेद ।

अनाथिनी एक [illegible] के भीतर जिस मार्ग से कि जाती थी वहां कुछ देख के स्तम्भित हुई । क्यों ? उदासीन ने सब को आगे जाने के लिये कहा । उदासीन के कान में क्या कहा ? हरिहर बाबू के इतने उपकार करने पर उन का मुखमलीन क्यो हुआ ? उसके ताम्बूलराग रञ्जित ओठों से हँसी एकदम क्यों अन्तर्हित हुई ? विधिर्वलीयान् ! ! !

अनाथिनी के अनुरोध करने से सुबदना प्रेमदास उदासीन और सरला आगे चले, अनाथिनी उनलोगों का संग छोड़ के उसी जङ्गल में ठहर गई । एक बट वृक्ष के नीचे कर पर कपोल धर के सोचने लगी, उसने क्या सोचा ? यह कि अब मै अपना प्राण दे दूँगी ! हाय ! संसार में कोई वस्तु बिना श्रम के नहीं मिलती ! अहा ! हरिहर बाबू को छोड़ाय के उनके संग विवाह करने की इच्छा थी किन्तु हा ! वह तो बिफल हुई ! हा ! मैंने कैसे जाना कि बिफल हुई ? यह देखो एक टूटी फूटी पालकी पड़ी है ! इसी पर सवार हो के भूपेन्द्र पिता के घर जाते थे ।

हरिहर बाबू के पुत्र का नाम भूपेन्द्र था, कापालिक के हाथ से मुक्त करके पालकी पर सवार कराय उन्हें घर

विदा किया था, उस शिविका को अनाथिनी चीन्हती थी, वही शिविका यहां भग्न [illegible] इसलिये अनाथिनी ने मन में निश्चय किया "[illegible] विपद में फँसे होंगे, इसी सोच से अनाथिनी को आँखों से चौधारे आंसू बहने लगे; और बराबर दीर्घनिश्वास निकलने लगा, थोड़ी देर में किसी प्रकार अपना मन शान्त करके उठी, और धीरे २ जङ्गल के भीतर घुसी। यह वही जङ्गल है, जिस्में कापालिक का भग्नगृह था, काँपते २ अनाथिनी चली जाती थी, और मन में नाना प्रकार भावों की तरङ्गों का परस्पर आघात प्रतिघात होता था, अनाथिनी इतनी अन्य मनस्क थी कि यदि सैकड़ों तोपें छूटतीं तौभी उस्के कानों पर जूँ तक न रेंगती, किन्तु प्राकृतिक घटना ऐसी आश्चर्यमय है कि जिस्के कारण एक भीषण शब्द ने उस्का मन अपनी ओर आकर्षित किया, शब्द तीर की तरह उसके रोम २ में चुभ गया, और अनाथिनी इति कर्तव्य विमूढ़ हो काँपने लगी।

उसने सुना कि बाममार्गी कापालिक की कलुषित भावों से भरी मंत्रध्वनि बज्र निनाद की तरह बन में गूँज रही है, अनाथिनी ने समझा कि बस अब दीपनिर्वाण प्राय: है, जो कुछ करना हो उसमें शीघ्रता करनी चाहिये अब इस अतुच्छ प्राण का मोह क्यों करूँ? जब कि स्वयं

प्राण देने को खड़ी हूँ इत्यादि कहते २ जिस ओर से मंत्रध्वनि आती थी ...

भागीरथी के किनारे ... अनाथिनी ने देखा कि पूर्व परिचित राक्षसाकृत कापालिक प्रज्वलित अग्निकुण्ड में जोर से मंत्र पढ़ते २ मांस आदिक होम करता है, और सामने एक कात्यायिनी देवी की मूर्ति शवासन पर स्थापित है, देवी के पैरों में हस्तपादबद्ध भूपेन्द्र औंधा पड़ा है और बगल में हाथ में नङ्गी तरवार लिये रामशङ्कर खड़ा है, तथा पासही एक पेड़ के नीचे मनसाराम का भाई, जिसने कि मजिष्ट्रेट को छुरी मारा था, बैठा है। यह सब कौतुक देख के अनाथिनी क्षणभर के लिये अचल प्रतिमा हो गई।

पाठकों को अब विदित हुआ होगा कि मजिष्ट्रेट के बध के अनन्तर रामशङ्कर, मनसाराम के भाई के संग जङ्गल पहाड़ों में छिपा फिरता था, क्योंकि दोनों पर वारण्ट जारी था, गत परिच्छेद में जिन अश्वारोहियों ने रामशङ्कर का हाल पूछा था, वे इन्स्पेक्टर आफ़ पुलिस थे, जब उदासीन ने भूपेन्द्र को कापालिक के कारागार से मुक्त किया तब से कापालिक फिर भूपेन्द्र के अनुसन्धान में था।

जब से अनाथिनी का पक्ष लेकर हरिहर बाबू ने रामशङ्कर को उचित शिक्षा दी थी, तब से वह हरिहर

बाबू का जाति शत्रु हो गया था... ने कापालिक से मिल के भूपेन्द्र के सर्व... रचा था, इसमें यह मतलब था कि भू... हरिहर बाबू भी एक प्रकार मृतकल्प हो जायँगे, तब अनाथिनी वस्तुतः अनाथिनी हो जायगी ! तब उसे मैं अपनी गणिका और सुरेन्द्र को, दत्तक पुत्र बनाऊँगा, इसी अभिप्राय से उस पतित ने यह जाल फैलाया था।

दुर्भाग्यवश इसी जङ्गल से होकर भूपेन्द्र बाबू अपने घर जाते थे, मार्ग में रामशङ्कर और कापालिक ने इन्हें चीन्ह के फिर पकड़ लिया, और इन्हें असार संसार से शीघ्र बिदा करने के लिये, गङ्गा किनारे अभिचार रचा था।

इस भयानक व्यापार को देख के अनाथिनी का हृदय विदीर्ण प्राण जीर्ण औ मन संकीर्ण तथा देहशीर्ण हो गया व्यथित अन्तःकर्ण से कापालिक के पास जाय के रोते २ बिनीतभावपूर्वक कहने लगी—

'महाशय ! आपको तो नरबली देना है न ? तो इन निर्दोषी पुरुष को छोड़ के उनको जगह मुझे देवी के आगे बल चढ़ा दीजिये, मानुष लोलुप देवी कामिनी के कोमल कमनीय तथा मीठे मांस से ज्यादे प्रसन्न होंगी ! इनके मरने से एक घर का चिराग बुझ जायगा. किन्तु मेरे पोछे कोई रोनेवाला नहीं है, दया करके इन्हें छोड़ के मेरा बध करिये"।

अनाथिनी महा विलापपूर्वक बारम्बार यही कहती और कापालिक त... चरणों में लोटती थी, पर किसी ... ों पर भ्रूक्षेप भी नहीं किया। रामश... कापालिक ... आज्ञा का आसरा देख रहा था, होम ... प्राप्त होने पर कापालिक ने भूपेन्द्र के बध व बलि की आज्ञा दी, भूपेन्द्र ने कापालिक की बहुत बिनती करके अनाथिनी से अन्तिम समय की बिदा लेने की अनुमति ली, और सकरुण तथा क्षीण स्वर से बोले—

'कोमल हृदये! अब क्यों व्यर्थ अनुनय विनय करती हो। तुम्हारे आर्त्तनाद पर कौन दया करेगा। विधाता की इच्छा नहीं है कि मेरा उद्धार हो! अहा! प्यारी तुमने मेरे उद्धार के लिये सब कुछ किया। किन्तु यही दुःख मन में है कि मैं कुछ भी तुम्हारा प्रत्युपकार नहीं कर सका! अस्तु— हरेरिच्छा वलीयसी!!! तुम सरला से कहना कि उदासीन के संग व्याह कर ले, और प्रिये! तुम जाय के हमारे वृद्ध पिता की सांत्वना करना।" अनाथिनी कुछ भी नहीं बोली, किन्तु ऊंचे स्वर से रोती थी, कापालिक ने भूपेन्द्र को डांट के बलि चढ़ाने के लिये प्रस्तुत किया, रामशङ्कर तलवार उठाय के भूपेन्द्र का सिर धड़ से अलग किया चाहता था कि बन में घोड़ों की

"टापाटप" टाप सुनाई पड़ी, [illegible] कई अश्वारोहियों ने आकर चण भर में [illegible] ङ्कर तथा फकीर को पकड़ लिया, यह [illegible] स से राम शङ्कर का हाल [illegible], अना [illegible] पेन्द्र का बन्धन खोल के हँसी खुशी उ [illegible] तंग आनन्द [illegible] चली।

भावी दम्पति में जो प्रणयालाप हुआ वह हम किस प्रकार कहें भुक्त भोगी महाशय और महाशयाजन स्वयं जान सकती हैं।

[illegible]रिशिष्ट ।

शु[illegible] दिन में, [illegible] में अनाथिनी के संग हरिहर बाबू के पु[illegible] शुभविवाह हुआ, दोनों के आनन्द [illegible]

सरला से उद्[illegible] हुआ, वह दोनों प्रणयी भी आनन्दसिंधु में डू[illegible] ।

सुवदना से प्रेमदास का परिणय हुआ और उन्हें हरिहर बाबू ने भू सम्पत्ति देकर अयाची कर दिया सुवदना इस हर्ष में फूली नहीं समाती थी ।

मनसाराम को मनुष्य स्तेय के अपराध में तीन वर्ष सपरिश्रम कारावास; कापालिक को यावज्जीवन द्वीपान्तर; मजिस्ट्रेट के बधकारी को फाँसी; रामशंकर को दस वर्ष का कारागार का दण्ड हुआ, पाप का ऐसा बिषमय फलफला हमने सुवदना, सरला और अनाथिनी की रूप वर्णन नहीं लिखी है, इससे रूपगर्विंतागण रुष्ट होंगीं । किन्तु हम क्या करें? वह तीनों अद्वितीय रूपवती थीं, तो उन निरूपमाओं की किसको उपमा देते? यदि कोई रूपगर्विता पाठिका उन तीनों के रूप की छटा देखा चाहें तो पहिले अपने रूप को निरा पानी समझें तब उन तीनों रमणियों की छवि स्वयं आँखों के आगे आ जायगी ।

अनाथिनी का नाम हरिहर बाबू ने "गृहलक्ष्मी" रक्खा।